नये सवाल, नये निदान

यैस ओशो

फरवरी 2024 वर्ष 15 अंक 5

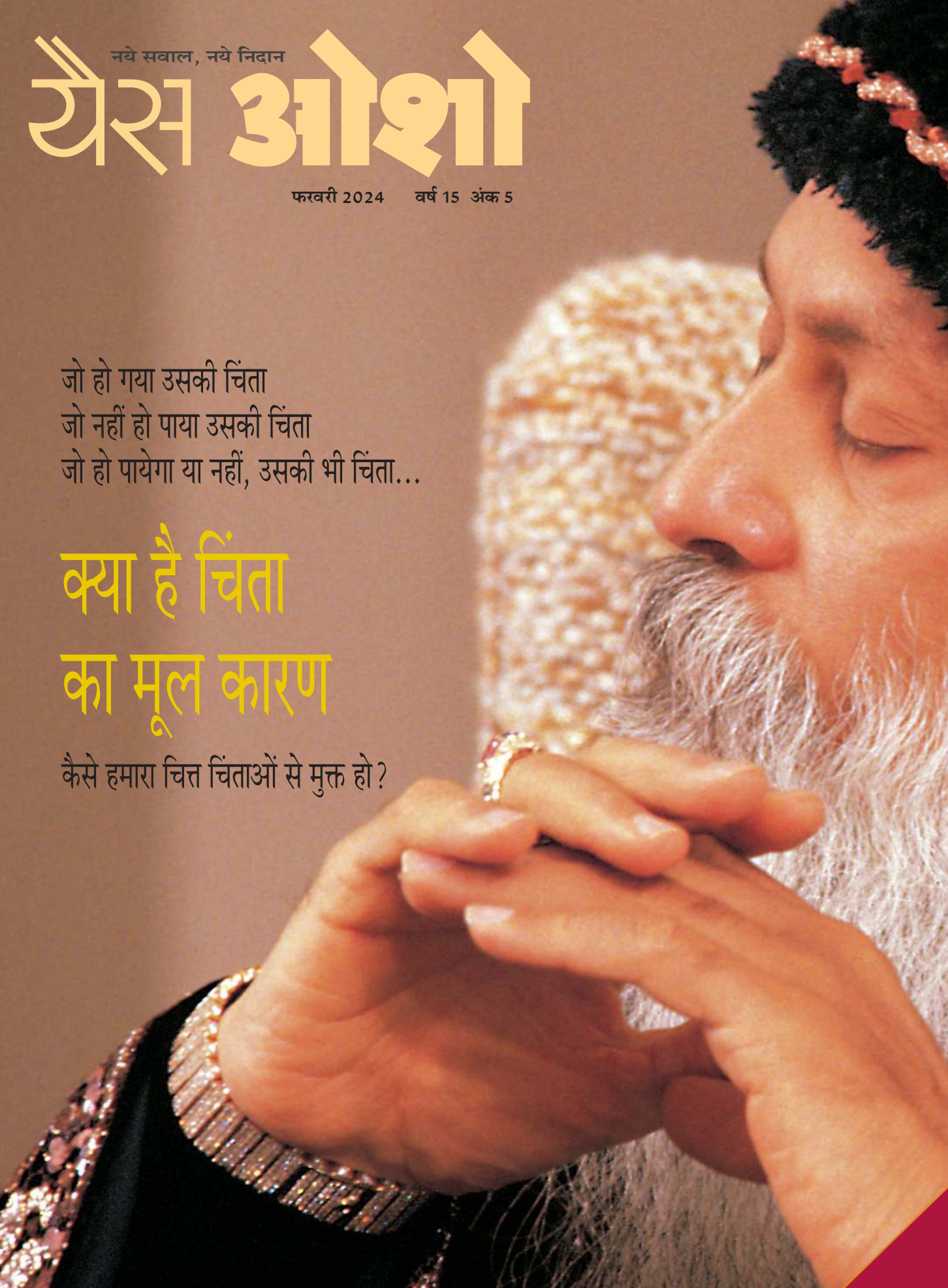

जो हो गया उसकी चिंता
जो नहीं हो पाया उसकी चिंता
जो हो पायेगा या नहीं, उसकी भी चिंता...

क्या है चिंता का मूल कारण

कैसे हमारा चित्त चिंताओं से मुक्त हो?

बदलाहट तो आपको ही करनी होगी...

मैं कह दूं, और आप सत्य को जान जायें, यह तो हो नहीं सकता। हो सकता तो बड़ी आसान बात थी। मेरे बोलने का आशय बस इतना है कि मेरी बात अगर आपके हृदय में किसी कोने में पहुंच जाए, अगर आप अपने हृदय में दरवाजा खोलें और उसको भीतर जाने दें, तो वह आपके भीतर बीज बन सकती है। और वह बीज आपके भीतर विकसित हो सकता है। लेकिन वह विकास करना होगा आपको, वह बदलाहट करनी होगी आपको। हां, इतना जरूर मैं कह सकता हूं कि वह बदलाहट कठिन नहीं है, बहुत आसान है, बहुत सरल है।

अपने माहिं टटोल, प्रवचन 2

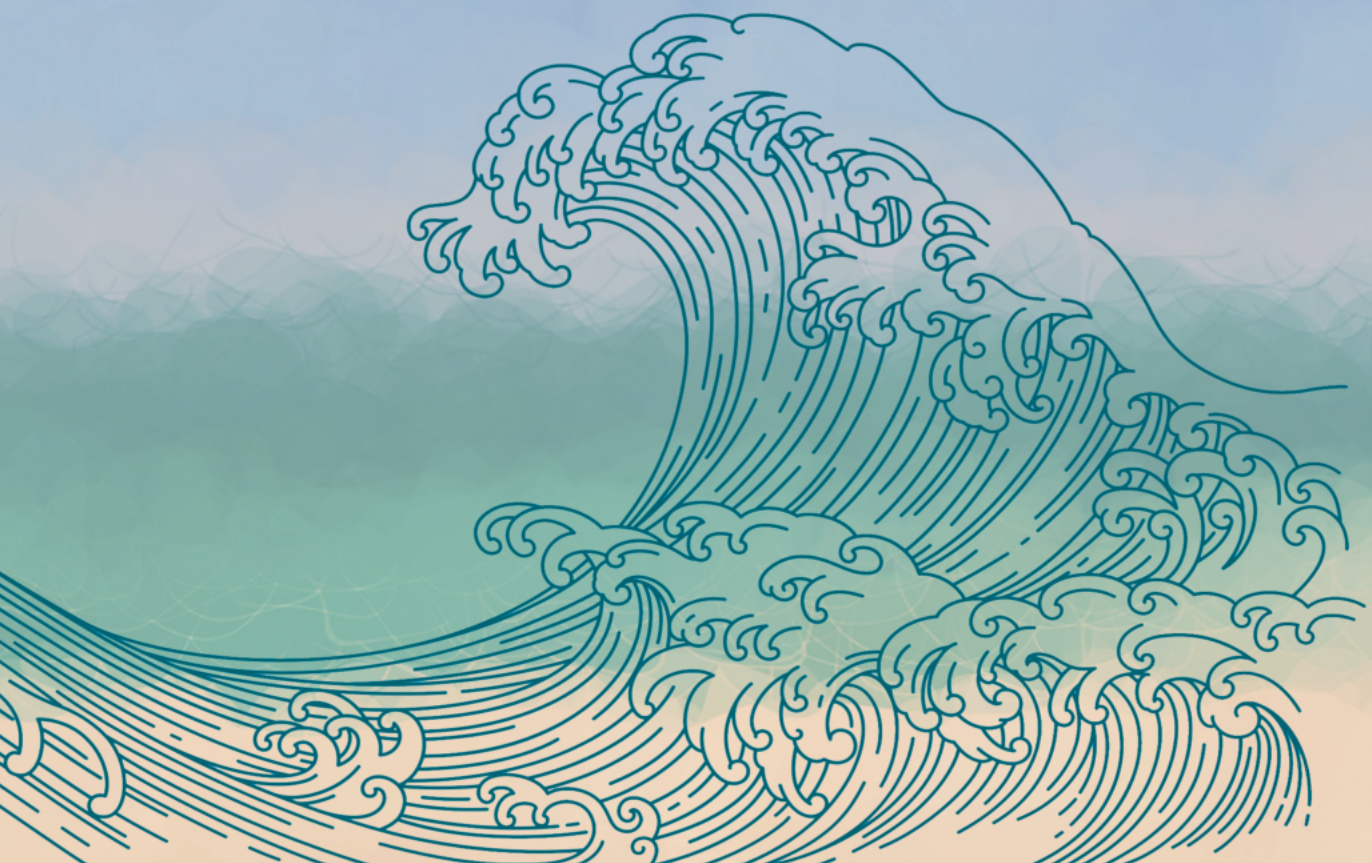

धर्मों के नाम पर कितना खून हुआ, कोई गणना है?

जो आदमी भी एक नये मन को जन्म देने के लिए उत्सुक हुआ हो, उसे हिम्मत करनी होगी कि वह पुराने मन को मिटाने में, नष्ट करने में समर्थ हो सके, साहसी हो सके। जो आदमी पुराने मन को ही लेकर इस खयाल में हो कि मैं परमात्मा तक पहुंच जाऊंगा, वह गलती में है। नया मन चाहिए–ताजा, जीवंत, जिससे सारी व्यर्थ की चीजें अलग कर दी गई हों–तब मन की भूमि तैयार होती है और उसमें फिर बीज बोए जा सकते हैं। छोटे-छोटे किसान भी इस बात को भलीभांति जानते हैं, लेकिन बड़े से बड़े मनुष्य भी इस बात को नहीं जानते हैं।

अदभुत है हमारा अज्ञान! जीवन के बाबत कुछ भी ज्ञात नहीं है, लेकिन उस अज्ञात सत्य के संबंध में भी हम कल्पनाएं कर लेते हैं और कल्पनाओं पर लड़ते हैं। अनुमान कर लेते हैं, अनुमानों पर लड़ते हैं, हत्याएं करते हैं। सिद्धांतों और शास्त्रों के नाम पर कितने मनुष्यों की हत्या हुई है, कोई हिसाब है? धर्मों के नाम पर कितना खून हुआ है, कोई गणना है? मंदिर और मस्जिदों के नाम पर कितनी आगजनी हुई है, कोई हिसाब है? किसने की है यह? यह जानने वाला आदमी जिसको यह भ्रम है कि मैं जानता हूं! जिसे यह खयाल है कि मैं जो जानता हूं वह सत्य है! खुद के प्राणों का कोई पता नहीं है और हम दूर के सत्यों के निर्णायक बन जाते हैं।

यह जो जानने का भ्रम है, जब तक न छूट जाए, तब तक जानने के द्वार खुलते ही नहीं। ज्ञान के द्वार केवल उसी के लिए खुलते हैं, जो उस द्वार पर बिलकुल अज्ञानी की भांति खड़ा हो जाता है। और जो कहता है: मैं तो कुछ भी नहीं जानता हूं, मुझे तो कुछ भी पता नहीं है, मुझे तो जीवन के अ ब स का भी कोई अनुभव नहीं है, मैं तो निपट न जानने वाला हूं।

अपने माहिं टटोल, प्रवचन 2

अनुक्रम

यैस ओशो
फरवरी 2024

कवर स्टोरी

14. क्या है चिंता का मूल कारण
15. सच में ही चिंता छोड़ना चाहते हैं?
16. चिंता महत्वाकांक्षा का हिस्सा है
17. जो हो ही चुका उसकी क्या चिंता?
18. चिंता है कर्ता की छाया
19. अतीत का बोझ तुम्हारी चिंता है
20. अपनी मर्जी को थोपने की कोशिश
21. प्रवाहमान जगत में चीजों को रोक लेने की चाह
22. जब मैं कर्ता नहीं हूं
24. चिंता से मुक्त होने की कला
25. ध्यान चिंता-मुक्ति है
26. सब स्वयं हो रहा है
28. चिंता का अर्थ यह है कि बोझ मुझ पर है
29. चिंतित होने की क्या जरूरत है?

अन्य स्तंभ

5. संपादकीय
8. बड़े मियां का लकड़ियों का गट्ठर
10. रोज़मर्रा के प्रश्न व ओशो के समयातीत उत्तर
12. ध्यान विज्ञान
31. नये संकेत
34. कुछ पुस्तकें पढ़ने जैसी
40. हमारी प्यारी धरती
48. स्वास्थ्य
52. विज्ञान भैरव तंत्र की विधि पर आधारित कहानी
54. दर्शन के दस्तावेज
60. लगन महुरत झूठ सब

प्रकाशक व संपादक : संजय भारती
प्रकाशन का स्थान : सेलिब्रेंट्स, बी 10, सनशाइन टॉवर्स, पॉपुलर हाइट्स रोड, कोरेगांव पार्क, पुणे 411 001
ईमेल : yesosho.info@gmail.com

कार्यकारी संपादक : संतोष भारती **फीचर सहयोग** : अनिल सरस्वती, आत्मो मनीष
सृजन सहयोग : बॉबी **फोटोग्राफी** : आत्मो मनीष, सुपर्णी **वितरण व्यवस्था** : देव साम्या

First Publication Copyright © 1953 OSHO International Foundation.
Copyright © All revisions 1953-2022 OSHO International Foundation. All rights reserved.

संजय भारती

हमारे लिये वह 'अब' कब होगा?

31 अक्टूबर 1984 को ओशो ने साढ़े तीन साल के सार्वजनिक मौन के बाद फिर से बोलना शुरू किया। मार्च 1981 में इस मौन में जाने से पहले वे बारी-बारी से कुछ दिन हिंदी और कुछ दिन अंग्रेजी में बोला करते थे। सिर्फ एक छोटी-सी किताब को छोड़कर ओशो का बाकी सारा हिंदी साहित्य मार्च 1981 से पहले के दौर का ही है। अक्टूबर 1984 के बाद ओशो फिर कभी हिंदी में नहीं बोले—सिवाय उन दस दिन के जब वे विश्वयात्रा से मुंबई पहुंचे थे और उनके किसी भी पाश्चात्य संन्यासी को उन तक पहुंचने का वीसा नहीं मिल पाया था। ये दस दिन प्रतीक्षा के दिन थे, कि ओशो के वचनों की ऑडियो व वीडियो रिकॉर्डिंग करने वाली इंटरनेशनल टीम पहुंचकर अपना काम संभाल ले—तब तक दस दिन ओशो हिंदी में बोले, और 'कोंपले फिर फूट आई' पुस्तक तैयार हुई। जैसे ही कार्य को संभालने के लिए इंटरनेशनल टीम पहुंची, ओशो ने अंग्रेजी में बोलना शुरू कर दिया। इसके बाद बहुत अनुनय के बाद भी, ओशो ने एक दिन के लिए भी हिंदी में बोलने से मना कर दिया।

ओशो ने कहा कि अब वे अपने कार्य के अंतिम शिखर रख रहे हैं, अब वे अपनी पेंटिंग में अंतिम रंग भर रहे हैं, और उनका संदेश अब पूरे विश्व के लिए उपलब्ध होना चाहिए—इसलिए वे अंग्रेजी में ही बोलेंगे।

अक्टूबर 1984 से अप्रैल 1989 तक ओशो बोले, और फिर वापस में मौन में चले गए, और उसके बाद फिर अंत तक सार्वजनिक मौन में ही रहे। साढ़े चार साल की इस अवधि में ओशो जो बोले, वह अभिव्यक्ति के तल पर पूर्व में बोले हुए उनके वचनों से बहुत भिन्न है। ऐसा नहीं कि पूर्व में ओशो कुछ और कह रहे थे और अब कुछ और कहने लगे—कह तो वे अब भी वही रहे थे जो पहले कह रहे थे, लेकिन अपनी बात को कहने के लिए उन्होंने संदर्भ-स्रोत बदल दिए। अब उन्होंने वे खूंटियां गिरा दीं जिन पर पहले वे अपने वचनों को टांग रहे थे। अब उनके शब्द उन आवरणों से नग्न होने लगे, जिनमें लपेटकर वे उनको हम तक पहुंचा रहे थे। अब उनके शब्द हमारे अतीत के संस्कारों को खुजलाए और बहलाये बिना हम तक पहुंचने लगे—सीधे और तुरंत।

परमात्मा हो या अन्य कोई बैसाखियां जो धर्म के नाम पर मनुष्य को पकड़ाई गई हैं, उन सभी को इस अवधि में ओशो ने अपने कार्य से विदा कर दिया। ऐसा नहीं कि वे बैसाखियां कभी भी उनके कार्य का हिस्सा रहीं—बस उनके होने का एक अहसास-सा था, ताकि अतीत के धागों से बंधे हुए हमारे मन को झुनझुना-सा दिखाया जा सके। उन झुनझुनों ने हमें आकर्षित किया, लेकिन बात तो ओशो ने सदा ही वही कही जो उन्हें कहनी है।

जब ओशो को लगा कि अब झुनझुनों के बिना, उनकी बात को सीधा समझने के लिए, बहुत लोग तैयार हैं—तो उन्होंने झुनझुने तोड़ दिये। अब उनकी पेंटिंग उनके अपने विशिष्ट रंगों से रंगी जा सकती है।

31 अक्टूबर 1984 को दोबारा बोलना शुरू करते हुए ओशो ने कहा, 'आज मैंने अचानक फिर से बोलने का निर्णय लिया है—एक हजार तीन सौ पंद्रह दिन बाद—केवल इस कारण से कि जो चित्र मैं अपने पूरे जीवन भर बना रहा था, उसे पूरा करने के लिए उसमें यहां-वहां कुछ रंग भरे जाने जरूरी हैं, क्योंकि जिस दिन मैं मौन में गया, वह चित्र अधूरा छूट गया था। इससे पहले कि अपने भौतिक शरीर में मैं तुमसे विदा लूं, मैं उस चित्र को पूरा करना चाहूंगा।'

'पहले मैं हिंदुओं से, क्रिश्चियन्स से, ज्यूज़ से, मुसलमानों से, जैनों से, सिक्खों से, लगभग सभी तथाकथित धर्मों के लोगों से बोल रहा था। पहली बार मैं अपने लोगों से बोल रहा हूं : हिंदुओं से नहीं, मुसलमानों से नहीं, क्रिश्चियन्स से नहीं।'

'इससे बहुत फर्क पड़ता है, जिसके कारण ही मैं अपने चित्र को पूरा कर सकता हूं। और क्या है वह फर्क? तुमसे मैं सीधे बात कर सकता हूं। हिंदुओं से मुझे कृष्ण के माध्यम से बात करनी पड़ी, और मैं इससे खुश नहीं था। लेकिन और कुछ किया भी नहीं जा सकता

था, यह एक अनिवार्य बुराई थी। क्रिश्चियन्स से मैं जीसस के माध्यम से ही बात कर सकता था। इससे मैं सहज नहीं था, लेकिन और कोई चारा भी नहीं था। महावीर पर बोलना जरूरी था क्योंकि उसके बिना जैनों को मैं अपनी बात सुनाने के लिए कैसे बुलाता? और महावीर के साथ मैं हर बिंदु पर राजी नहीं होता। तो मुझे एक अजीब काम करना पड़ा : मुझे केवल उन बिंदुओं पर बोलना पड़ा जिनसे मैं सहमत हूं और उन बिंदुओं को छोड़ देना पड़ा जिन पर मैं असहमत हूं। और जिन बिंदुओं पर मैं सहमत हूं उन्हें भी मुझे अपना अर्थ देना पड़ा। मैंने उनके मुंह से वे बातें कहलवा दीं जो उन्होंने सपने में भी नहीं सोची होंगी। लेकिन और कोई उपाय नहीं था।'

आगे उन्होंने कहा, 'सारा संसार विभाजित है। तुम्हें एक आदमी नहीं मिलेगा जो पूरी तरह कोरा हो। या तो वह क्रिश्चियन होगा और एक तरह का कचरा ढो रहा होगा, या वह हिंदू होगा और दूसरी तरह का कचरा ढो रहा होगा। तो उअनके साथ उनकी भाषा में ही बात करनी पड़ी। लेकिन अब यह संभव है कि मैं अपनी बातें सीधी कह सकूं, वे भले ही कितनी कड़वी क्यों न लगे।'

और निश्चित ही ये 'कड़वी बातें' सहनी मुश्किल हैं, क्योंकि वे व्यक्ति को निराधार छोड़ जाती हैं—केवल अपने सहारे, केवल अपने दीपक के प्रकाश में। इन 'कड़वी बातों' में परमात्मा की अवधारणा को पोंछ डाला गया है, उसे टॉयलेट में फ्लश कर दिया गया है। यूं तो पहले भी ओशो ने परमात्मा की जब बात की, तो बार-बार स्पष्ट करते चले कि वे किसी व्यक्तिवाची परमात्मा की बात नहीं कर रहे जो कहीं बैठा आपको देख रहा है, आपको सम्हाल रहा है। परमात्मा की उनकी परिभाषा पहले भी यही थी कि परमात्मा जैसी कोई सत्ता है ही नहीं—लेकिन फिर भी परमात्मा का जिक्र था, क्योंकि हमारा मन परमात्मा के बिना खड़ा ही नहीं हो सकता था।

अपने कार्य के नए चरण में ओशो ने परमात्मा की अवधारणा को नेस्तनाबूद कर दिया। अब उन्होंने जब भी 'परमात्मा' शब्द का प्रयोग किया, वह या तो तिरस्कार के लिए था, या उपहास के लिए। ओशो की बोली अंतिम शृंखलाओं में से एक शृंखला का शीर्षक है—गॉड इज़ डैड : नाव ज़ेन इज़ दि ओनली लिविंग ट्रुथ। (परमात्मा मर चुका है : अब झेन एक मात्र जीवंत सत्य है।)

इसके बाद, ओशो ने निर्देश दिया कि उनकी पहले की पुस्तकों में भी जहां-जहां परमात्मा शब्द आता है, उसे यदि 'अस्तित्व' 'भगवत्ता' या 'सत्य' से बदला जा सके तो बदल दिया जाए—बस जहां बदलने से अटपटा हो जाता हो, वहां बदलने की जरूरत नहीं है।

ओशो ने कहा कि वे परमात्मा की अवधारणा को नेस्तनाबूद कर रहे हैं ताकि संप्रदायों में बांटने वाले धर्म के पूरे आधार को नष्ट किया जा सके। अपने कार्य के अंतिम वर्षों में ओशो ने अपने वचनों का एक संकलन प्रकाशित करने का भी निर्देश दिया—आई टीच रिलिजसनेस नॉट रिलीजन (मैं धर्म नहीं, धार्मिकता सिखाता हूं।)

हमें स्वयं से पूछने की जरूरत है : क्या हम ओशो को अभी भी अपने किसी धर्म, किसी संस्कृति, अतीत की किसी मान्यता के चश्मे से देख रहे हैं? यदि ऐसा है, जो फिर हम ओशो से बहुत पीछे छिटक गए हैं—भले ही सपना ले रहे हों कि हम उनके साथ चल रहे हैं।

यदि हम अतीत की धार्मिक अवधारणाएं लेकर ओशो के साथ चल रहे हैं तो हमने वे 'अनिवार्य बुराइयां' पकड़ रखी हैं, जिनका उपयोग ओशो कहते हैं कि उन्हें मजबूरी में करना पड़ा—क्योंकि हम तैयार नहीं थे। उन मूढ़ताओं के प्रति ग्लानि से भर जाने की बजाय, उन्हें अपना अधिकार कहकर उनके लिए सड़कों पर शोर-शराबा करना—यह तो चोरी और फिर सीनाजोरी वाली बात हो गई।

अक्टूबर 1984 में मौन से बाहर आने के बाद की दूसरी शृंखला 'फ्रॉम पर्सनलिटि टू इंडिविजुअलिटी' में ओशो से एक प्रश्न पूछा गया : क्या आपके लिए स्वयं को 'धर्म' शब्द के साथ जोड़े बिना कार्य करना ज्यादा आसान न होता? आपने ऐसा करने का चुनाव ही क्यों किया?

ओशो ने उत्तर दिया, 'मुझे बहुत अच्छा लगता कि धर्म शब्द के साथ मेरा नाता न होता। धर्म का पूरा इतिहास बदबू देता है। यह इतिहास वीभत्स है और मनुष्य के पतन व अमानवीयता को दर्शाता है। और यह किसी एक धर्म की बात नहीं है, यह संसार के सभी धर्मों द्वारा दोहराई गई कहानी है : परमात्मा के नाम पर मनुष्य का शोषण। मुझे धर्म शब्द के साथ अपना नाम जोड़ने में असहज लगता है। लेकिन कई बार जीवन में वे चीजें चुननी पड़ती हैं, जो व्यक्ति को नापसंद होती हैं।'

'...प्रारंभ में मैं हर जगह धर्म के खिलाफ बोल रहा था, लोगों को इस बकवास से बाहर निकालने की कोशिश कर रहा था। लेकिन

परिणाम यह हुआ कि मैं अलग-थलग पड़ गया। कोई मुझसे बात भी नहीं करना चाहता था...अंततः मुझे अपनी रणनीति बदलनी पड़ी। मुझे महसूस हुआ कि जो लोग सत्य की खोज में उत्सुक थे, वे धर्मों में उलझ गए थे। क्योंकि वे मुझे अधार्मिक मानते थे, तो मैं उनसे संवाद नहीं कर पा रहा था। और ये वे लोग थे जो वास्तव में जानने में उत्सुक होते। ये वे लोग थे जो मेरे साथ अज्ञात की यात्रा पर निकल सकते थे। लेकिन वे किसी धर्म, किसी संप्रदाय, किसी मान्यता में उलझे हुए थे। और उनका मुझे अधार्मिक व नास्तिक मानना, उनके व मेरे बीच की बाधा थी। और ये वे लोग थे जिन्हें मुझे खोज लेना था।'

'ऐसे लोग भी थे जो किसी धर्म में नहीं उलझे थे, लेकिन वे खोजी नहीं थे...। वे मेरे किसी काम के नहीं थे। वे उसमें उत्सुक न होते, जो मेरे पास देने के लिए था...। उनके साथ संवाद असंभव था, क्योंकि हमारे आकर्षण के बिंदु अलग थे। मैंने बहुत कोशिश की, लेकिन वे लोग सत्य में या कुछ भी अर्थपूर्ण में उत्सुक नहीं थे।'

'और जो लोग सत्य में उत्सुक थे वे या तो क्रिश्चियन थे, या हिंदू थे, या मुसलमान थे, या जैन थे, बौद्ध थे : वे किसी न किसी विचारधारा का, किसी न किसी धर्म का अनुसरण कर रहे थे। फिर मुझे स्पष्ट हुआ कि मुझे धार्मिक होने का खेल खेलना पड़ेगा—और कोई उपाय नहीं है। केवल तभी मैं उन लोगों को खोज सकता हूं जो वास्तव में खोजी हैं।'

'मुझे धर्म शब्द नापसंद है, हमेशा से ही नापसंद रहा है। लेकिन धर्म के आवरण में मैं जो बात कर रहा था, वह वही नहीं थी जिसे लोग सामान्यतः धर्म समझते हैं। यह केवल एक रणनीति थी। मैं उनके शब्द—परमात्मा, धर्म, मुक्ति, मोक्ष—उपयोग कर रहा था, और उन्हें अपने अर्थ दे रहा था। इस तरह लोग मेरे पास आने शुरू हुए, और मुझे अपने लोग मिलने शुरू हुए।'

'लोगों की नजरों में अपने छवि को बदलने में मुझे कुछ वर्ष लगे। लेकिन लोग केवल शब्दों को सुनते हैं, अर्थ को नहीं समझते। लोग केवल वह समझते हैं जो कहा जा रहा है, जो अनकहा छोड़ दिया गया है उसे नहीं समझते...।'

'मैंने वही बातें कही होतीं—मुझे कोई जरूरत नहीं थी बीच में कृष्ण, महावीर या जीसस को घसीटकर लाने की। लेकिन मनुष्य की मूढ़ता ऐसी है कि पहले जब मैं वही बात कह रहा होता तो वे सुनते तक नहीं...और अब हजारों लोग आने लगे, क्योंकि मैं कृष्ण पर बोल रहा था...।'

'मुझे अपने उपाय खोजने पड़े। मैं परमात्मा की बात करता और कहता कि भगवत्ता उससे कहीं अच्छा शब्द है। वह मेरा तरीका था परमात्मा को छुट्टी देने का। लेकिन चूंकि मैं परमात्मा पर बोल रहा था, तो जो लोग धर्मों में उलझे हुए थे, वे मुझमें उत्सुक होने लगे। मुझे सब धर्मों से लोग मिलने लगे।'

'कोई और उपाय नहीं था, क्योंकि वरना मैं कभी भी उनमें अपनी पैठ न बना पाता। मैंने सोचा—उनके शब्दों का, उनकी भाषा का, उनके शास्त्रों का प्रयोग कर लो...।'

'अब मुझे किसी आवरण की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हारे सामने पूरी तरह नग्न, जैसा हूं वैसा खड़ा हो सकता हूं...।'

ओशो कह रहे हैं—अब। हमारे लिए वह 'अब' कब होगा?
हम कब ओशो को अपने अतीत के सांप्रदायिक संस्कारों से मुक्त होकर देखेंगे? हम कब अपने सांप्रदायिक कचरे को ओशो पर प्रक्षेपित करना छोड़ेंगे? कब हम ओशो को बिलकुल वैसा ही सुनेंगे जैसा वे कह रहे हैं?

यह हमारे ऊपर ही है। यह अभी हो सकता है। या फिर कभी नहीं—यदि ओशो को काट-छांटकर उन्हें उन उद्धरणों में तलाशते रहें, जिनमें हमारे अतीत के संस्कार पोषित होते हैं।

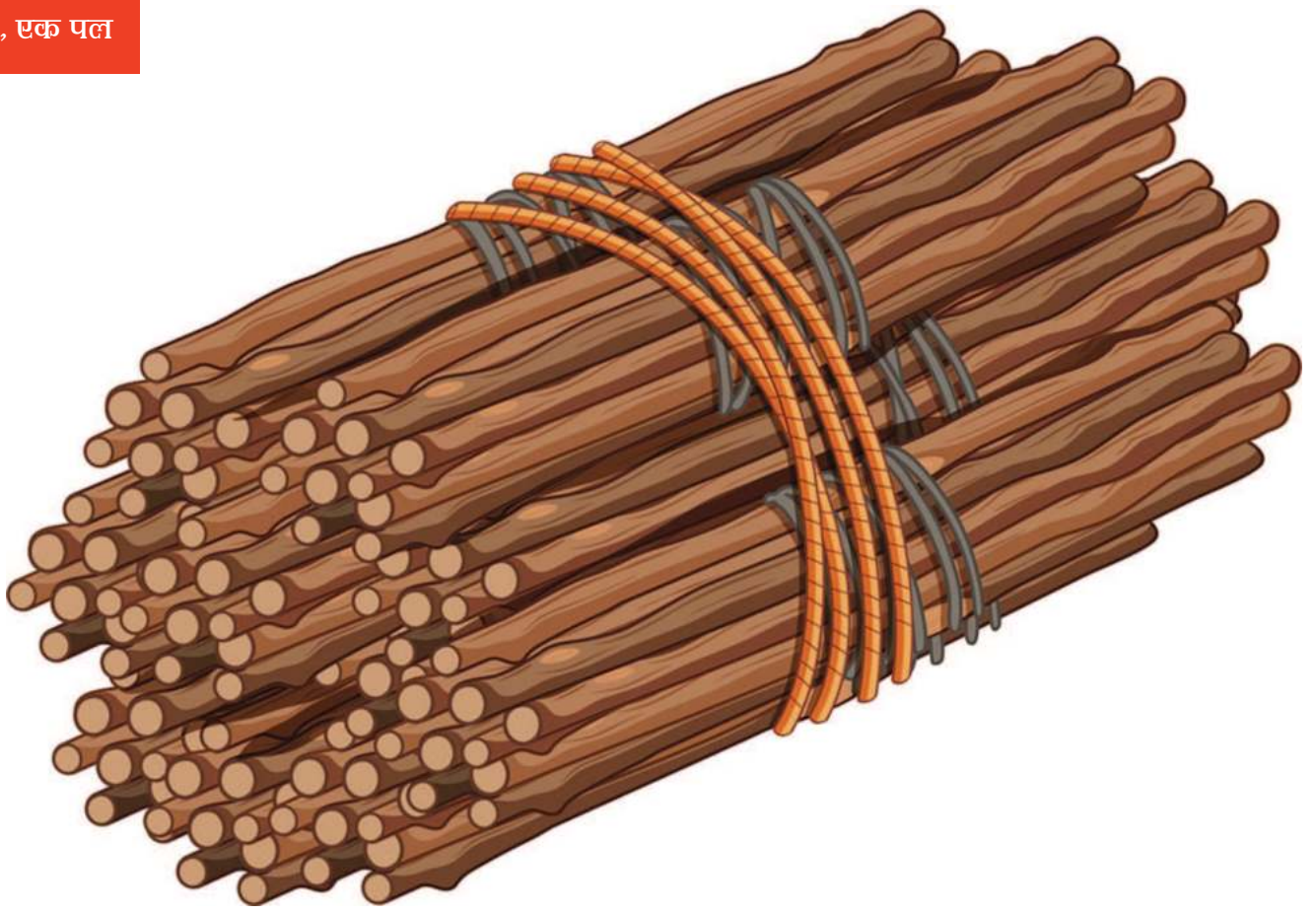

बड़े मियां का लकड़ियों का गट्ठर

एक बड़े मियां, जिन्होंने अपनी जिंदगी में बहुत कुछ कमाया-बनाया था, आखिर बीमार हुए। मृत्यु-रोग में गिरफ्तार हुए। उन्हें कोई फिक्र थी तो बस यही एक कि उनके पांच बेटों की आपस में नहीं बनती थी। गाढ़ी क्या, पतली भी नहीं छनती थी। लड़ते ही रहते थे। कभी किसी बात पर इत्तफाक न होता था। हालांकि इत्तफाक में बड़ी बरकत है। आखिर बड़े मियां ने एकता और इत्तफाक की खूबियां बेटों के दिल में उतारने के लिए एक पुरानी तरकीब खयाल में लाई। पढ़ी होगी ईसप की किताब में या पंचतंत्र में या लुकमान के वचनों में।

पुरानी तरकीब है, तुमने भी सुनी है, पढ़ी है, कि कोई बाप मर रहा था। उसने पांच लकड़ियां एक गट्ठे में बांध दीं, और अपने बेटों को कहा: तोड़ो। उन्होंने बड़ी तोड़ने की कोशिश की, लेकिन गट्ठर नहीं टूट सका। पांच लकड़ियां इकट्ठी मजबूत थीं। फिर उसने गट्ठर खोल दिया और एक-एक लकड़ी बेटों को दे दी और कहा: अब तोड़ो। उन्होंने तत्क्षण लकड़ियां तोड़ दीं। और बाप ने कहा कि देखो, पांच इकट्ठे होते हैं तो शक्ति होती है, पांच अलग-अलग हो जाते हैं तो निर्बल हो जाते हैं। यही मेरा तुमसे आखिरी निवेदन है। ऐसा कह कर बाप मर गया।

बड़े मियां को यह कहानी याद आई। सोचा कि उसी कहानी का उपयोग कर लें। बड़े मियां ने अपने बेटों को पास बुलाया और कहा: देखो, अब मैं कुछ ही दिन का मेहमान हूं। सब जाकर एक-एक लकड़ी लाओ।

एक ने कहा: लकड़ी! आप लकड़ियों का क्या करेंगे?

जमाना बदल गया; पुरानी कहानी में यह बात आती ही नहीं है कि आप लकड़ियों का क्या करेंगे। वह जमाना और था। बाप ने कहा लकड़ियां लाओ, लड़के लकड़ियां ले आए थे।

एक लड़के ने पूछा कि लकड़ी! आप लकड़ियों का क्या करेंगे?

दूसरे ने आहिस्ता से कहा: बड़े मियां का दिमाग खराब हो गया है। लकड़ी नहीं, शायद ककड़ी कह रहे हैं। ककड़ी खाने को जी चाहता होगा।

तीसरे ने कहा: नहीं, कुछ सर्दी है, शायद आग जलाने को लकड़ियां मांग रहे हैं।

चौथे ने कहा: बाबूजी, कोयले लाऊं?

पांचवें ने कहा: नहीं जी, कोयले से क्या होगा, उपले लाता हूं। वे ज्यादा अच्छे रहेंगे।

बाप ने कराहते हुए कहाः अरे नालायको, मैं जो कहता हूं वह करो।

क्योंकि उसको तो एक सिद्धांत सिद्ध करना था। तो कोयले से तो होगा नहीं सिद्ध, उपले से होगा नहीं सिद्ध—यह तो बात ही इन्होंने बदल दी; सब कहानी खराब किए दे रहे हैं। और वह कहानी की बात भी नहीं कह सकता पहले से कि मैं वह पुरानी कहानी...नहीं तो मतलब ही खत्म हो गया। उसको तो छिपा कर रखनी है; वह तो सिद्धांत निकालना है।

बाप ने कराहते हुए कहाः अरे नालायको, मैं जो कहता हूं वह करो। कहीं से लकड़ियां लाओ जंगल से।

एक बेटे ने कहाः यह भी अच्छी रही, जंगल यहां कहां? और महकमा-जंगलात वाले लकड़ी कहां काटने देते हैं! सजा करवाओगे?

दूसरे ने कहाः अपने आपे में नहीं हैं बाबूजी। बक रहे हैं जुनून में क्या-क्या कुछ।

तीसरे ने कहाः भई, लकड़ियों वाली बात अपनी समझ में तो बिलकुल नहीं आती।

चौथे ने कहाः बड़े मियां ने उम्र भर में एक ही तो ख्वाहिश की है, उसे पूरा करने में हर्ज भी क्या है? ले भी आओ। दिमाग तो मालूम होता है खराब हो गया है; मगर क्या बिगड़ता है, पांच लकड़ियां ले ही आओ।

पांचवें ने कहाः अच्छा मैं जाता हूं, टाल पर से लकड़ियां ले आता हूं।

चुनांचे वह टाल पर गया, टालवाले से कहाः खान साहब, जरा पांच लकड़ियां तो देना। अच्छी मजबूत हों।

टालवाले ने लकड़ियां दीं। हरेक खासी मोटी और मजबूत थी। बाप ने देखा तो उसका दिल बैठ गया, क्योंकि लकड़ियां इतनी मजबूत थीं कि एक-एक भी नहीं तोड़ी जा सकती थीं, पांच को तोड़ने का तो सवाल ही क्या था। यह बताना तो मतलब के खिलाफ ही था कि लकड़ियां क्यों मंगवाई गई हैं और उससे क्या नैतिक परिणाम निकालने की आकांक्षा है। आखिर बेटों से कहाः ठीक, अब तुम जब इन लकड़ियों को ले ही आए तो गट्ठा बांधो।

बेटों में फिर खुसर-पुसर होने लगी। गट्ठा! वह क्यों? अब रस्सी कहां से लाएं? भई बहुत तंग किया इस बुड्ढे ने! आखिर एक ने अपने पाजामे से इजारबंद निकाला और गट्ठा बांधा।

जमाना बदल गया, तुम कहां की पुरानी कहानी लिए बैठे हो!

बड़े मियां ने कहाः अब इस गट्ठे को तोड़ो।

बेटों ने कहाः लो भाई, यह भी अच्छी रही, कैसे तोड़ें! कुल्हाड़ा कहां से लाएं! अरे इस बूढ़े के दिमाग को हुआ क्या है। मरना हो तो मर ही जाओ। अब और तो न सताओ।

बाप ने कहाः कुल्हाड़े से नहीं, हाथों से तोड़ो, घुटने से तोड़ो। बाप ने देखा कि हाथ से तो टूटने वाली नहीं हैं। यह कहानी सब गड़बड़ ही हुई जा रही है। तो उसने कहाः हाथ से न टूटें तो घुटनों से तोड़ो, मगर तोड़ो।

बाप का हुक्म सिर आंखों पर। पहले एक ने कोशिश की, फिर दूसरे ने, फिर तीसरे ने, फिर चौथे ने, फिर पांचवें ने। लकड़ियों का बाल भी बांका न हुआ। सबने कहाः बाबूजी, हमसे नहीं टूटता यह लकड़ियों का गट्ठा।

बाप ने कहाः अच्छा, अब इन लकड़ियों को अलग-अलग कर दो। इनकी रस्सी खोल दो।

एक ने जल कर कहाः रस्सी कहां है, मेरा इजारबंद है। अगर आपको खुलवाना ही था तो गट्ठा बंधवाया क्यों था? तुम होश में हो कि तुम्हारा होश बिलकुल खराब हो गया है? लाओ भाई कोई पेंसिल दो, मैं इजारबंद अपने पाजामे में वापस डाल लूं।

खैर, बाप की भी कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि करना क्या है? कहानी तो पुरानी थी और बड़े मतलब की थी। मगर वक्त बदल गया, लोग बदल गए, ढंग बदल गया, सोचने के हिसाब बदल गए। फिर बाप ने कहाः अच्छा। जब लड़के ने अपना इजारबंद निकाल लिया, तो कहाः अब इनको एक-एक लकड़ी को एक-एक करके तोड़ो।

लकड़ियां मोटी-मोटी और मजबूत, बहुत कोशिश की, किसी से नहीं टूटीं। आखिर में बड़े भाई की बारी थी। उसने एक लकड़ी पर घुटने का पूरा जोर डाला, और तड़ाक की आवाज आई। बाप ने नसीहत करने के लिए आंखें एकदम खोल दीं। बाप तो तैयारी में था कि नसीहत करने के लिए एकाध तो टूट जाए। क्या देखता है कि बड़ा बेटा बेहोश पड़ा है। लकड़ी सही सलामत है, उसकी टांग टूट गई।

एक लड़के ने कहाः यह बुड्ढा बहुत जाहिल है।

दूसरे ने कहाः अड़ियल! जिद्दी!

तीसरे ने कहाः खूसट! सनकी! अकल से पैदल! घामड़।

चौथे ने कहाः सारे बुड्ढे ऐसे ही होते हैं, कमबख्त मरता भी नहीं।

बुड्ढे ने इत्मीनान की सांस ली कि बेटे कम से कम एक बात पर एकमत तो हुए। इसके बाद आंखें बंद कीं और बड़ी शांति से जान दे दी।

सत्य पुराने शब्दों में, पुराने ढांचों में आबद्ध होकर मर जाता है। सत्य को नई उदभावना चाहिए; नई तरंग चाहिए; नये गीत चाहिए—तो ही सत्य हृदय तक पहुंचता है। और जब ताजा-ताजा होता है, तभी पहुंचता है; बासा हो जाता है, फिर अर्थहीन हो जाता है।

सिखावन को आज के लिए मौजूं बनाना होगा; तभी वह सिखावन होगी, नहीं तो सिखावन नहीं होगी।

पद घुंघरू बांध, प्रवचन 4

इस कॉलम के अंतर्गत आप अपने प्रश्न हमें भेज सकते हैं। ओशो के प्रवचनों में से उनके उत्तर ढूंढने का हमारा प्रयास रहेगा।

जो है वह यही पल है...

प्रश्न : वैसे तो मैं सफल व्यक्ति हूं और वह सब कुछ है जिससे जीवन सुविधाजनक हो जाये, लेकिन फिर भी मन अकसर उदास हो जाता है। क्या कारण है?

राजेंद्र राघव, मनाली

ओशो : उदासी का अर्थ है कि तुम वर्तमान में नहीं हो। समझो: अतीत का कोई अस्तित्व नहीं। जो बीता सो बीता, अब कहीं भी नहीं है, सिवाय तुम्हारी स्मृतियों में। जैसे यात्री गुजर जाए और धूल उड़ती रह जाए; उड़ती हुई धूल यात्री नहीं है। जैसे गीत विदा हो जाए और गूंज रह जाए; गूंज गीत नहीं है। मंदिर की घंटियां बज चुकी हों और मंदिर के सन्नाटे में उनकी गूंज थोड़ी देर तक छाई रहे, वैसी ही तुम्हारी स्मृति है—अतीत की धूल से ज्यादा नहीं; अतीत के धुएं से ज्यादा नहीं। जो जा चुका है उसकी अनुगूंज। तुम्हारी स्मृति के सिवाय अस्तित्व नहीं है कोई अतीत का। और भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। भविष्य अभी आया ही नहीं है, उसका अस्तित्व कैसे होगा? लेकिन जो विक्षिप्त हैं वे अतीत में और भविष्य में ही जीते हैं। जो विमुक्त हैं वे वर्तमान में जीते हैं। क्योंकि वर्तमान ही केवल है। उसका न तुम्हारी स्मृति से कोई संबंध है और न तुम्हारी वासना से।

अतीत है स्मृतियों का संग्रह। जिन मुर्दों को तुम ढो रहे हो, वह अतीत है। जिन्हें तुम ढो रहे हो वे लाशें हैं—सड़ गईं, उनसे दुर्गंध उठ रही है। उस दुर्गंध ने तुम्हारा नर्क बना दिया है। मगर तुम लाशों को छोड़ते नहीं। तुम लाशों को सजाते हो। तुम लाशों की पूजा करते हो। तुम मुर्दों के भक्त हो। तुम मृत्यु के आराधक हो। और फिर अगर तुम्हारा जीवन इसी मृत्यु के नीचे दब जाता है, इसी जहर से विषाक्त हो जाता है, तो कुछ आश्चर्य नहीं। यह स्वाभाविक निष्पत्ति है। और अगर किसी तरह अतीत से छूटे भी तो एक पागलपन से छूटते नहीं कि तत्क्षण दूसरे पागलपन में प्रवेश कर जाते हो। वह दूसरा पागलपन है: भविष्य। अतीत है स्मृति और भविष्य है वासना, कल्पना—ऐसा हो, ऐसा हो जाए। और जैसा तुम चाहते हो वैसा कभी न होगा। कभी हो भी जाए भूल-चूक से, कभी संयोगवशात वैसा हो भी जाए—तुम्हारे किए तो नहीं, लेकिन संयोग से हो जाए—तो भी तृप्ति नहीं आएगी।

बहुतेरे हैं घाट

एक ही बात है कहने को, वही कही जा रही

प्रश्न : ओशो इतना कुछ बोल गये हैं। मैं कभी-कभी सोचती हूं कि इतना मैं कब पढ़ूंगी या सुनूंगी, अगर ऐसा नहीं कर पायी तो बहुत कुछ से चूक नहीं जाऊंगी?

सलोनी जैन, जयपुर

ओशो : शायद तुम्हें लगता हो कि रोज-रोज मैं नई बातें कहता हूं। नई बात कहने को नहीं है। सत्य एक है, झूठ अनेक हैं। अगर झूठ कहना हो तो रोज-रोज नये कहे जा सकते है। क्योंकि झूठ की ईजाद की जा सकती है। आदमी झूठ को बना सकता है। झूठ जितने चाहो उतने हो सकते हैं; जैसे बीमारियां जितनी चाहो उतनी हो सकती हैं; स्वास्थ्य एक है। स्वास्थ्य के नाम भी नहीं होते। तुम अगर कहो मैं स्वस्थ हूं, तो कोई यह भी नहीं पूछ सकता कि कौन से प्रकार का स्वास्थ्य? तुम कहो बीमार हूं, तो संगत रूप से पूछा जा सकता है, कौन सी बीमारी? क्षय रोग हुआ, कि टी. बी. है, कि कुछ और? बीमारियां में बीमारियां हैं। बीमारियों की बड़ी पर्तें हैं। स्वास्थ्य तो एक है।

झूठ अनेक हैं, सत्य एक है। झूठ का मतलब—आदमी की ईजाद। सत्य का अर्थ है: जो है। जो है, उसी को रोज-रोज कह रहा हूं। उसी को बार-बार कह रहा हूं। शायद शब्द बदल जाते हों, शायद रंग बदल जाते हों, ढंग बदल जाते हों—मगर सार वही है, चोट वही है। तीर एक ही तरफ जा रहा है—एक ही इशारे की तरफ।

यहां मैं नहीं बोल रहा हूं, वही बोल रहा है। वही बोल रहा है, इसलिए बोलने में कुछ सार है। वही बोल रहा है, इसलिए सुनने में कुछ सार है। वही बोल रहा है, इसलिए इसे पी जाने में और इसके द्वारा रूपांतरित होने की संभावना है।

हरि बोलौ हरि बोल

अनुशासन पंगु बना देता है

प्रश्न : मैं बचपन से ही अपनी मनमानी करती हूं। निश्चित ही शिक्षकों व अभिभावकों को पसंद नहीं आता था, लेकिन मैंने वही किया जो मुझे करने का मन हुआ। मैं कभी किसी अनुशासन में अपने को बांध नहीं पायी। क्या मैंने कुछ गलत किया?

श्वेता उपाध्याय, बेंगलुरु

ओशो : अनुशासन स्वयं ही समय-बाह्य हो गया है। अनुशासन की भाषा ही सड़ी-गली भाषा हो गई है। अनुशासन का अर्थ ही है: कोई दूसरा तुम्हें राह बताए, कोई दूसरा तुम्हारा हाथ थामे, कोई दूसरा तुम्हारा उत्तरदायित्व अपने कंधों पर ले। और यही तो कारण है कि लाखों में कोई एक जाग सका। जैसे ही कोई और तुम्हारी जवाबदारी ले लेता है, जैसे ही कोई और तुम्हारे हाथ को थाम लेता है, वैसे ही तुम्हें जागने की कोई जरूरत नहीं रह जाती।

जैसे कोई किसी छोटे बच्चे को सम्हाले ही रहे—इस डर से कि कहीं चलेगा तो गिर न जाए, कहीं चोट न खा जाए—तो फिर वह छोटा बच्चा अपंग ही रह जाएगा। चलने के लिए आवश्यक है गिरना भी। चलने के लिए जरूरी है भूल-चूक करना भी। भूल-चूक में कोई भूल-चूक नहीं है। भूल-चूक ही सीखने का एकमात्र रास्ता है।

अनुशासन तुम्हें भूल-चूक नहीं करने देता। वह तुम्हें जबरदस्ती भूल-चूक करने से रोक लेता है—जबरदस्ती। मन तो होता है भीतर भूल-चूक करने का। लेकिन जो आरोपित अनुशासन है, उसका जो भय है, उसका जो प्रलोभन है, वह तुम्हारे पैरों में जंजीर बन जाता है। वह तुम्हारे चारों तरफ एक कारागृह बन जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह प्रबुद्ध हो सकता है। आखिर क्यों लाखों में एकाध ही व्यक्ति जागा? इस बात की गहराई में जाना जरूरी है। लाखों में एकाध ही व्यक्ति इसलिए जागा कि लाखों में एकाध ही व्यक्ति इतनी हिम्मत जुटा पाया कि अनुशासन के बंधन को तोड़ कर मुक्त जीवन जीने का खतरा मोल ले। वह जुआरी का काम है। वह भूल-चूक करने की तैयारी है। वह इस बात की घोषणा है कि भूल-चूक भी करूंगा तो भी उधार नहीं करूंगा, अपनी करूंगा।

स्वयं का उत्तरदायित्व जो स्वीकार करता है वही जाग सकता है। और अनुशासन उसमें ही बाधा बन जाता है।

इसलिए मैं तुम्हें कोई अनुशासन नहीं दे सकता हूं। बहुत हो चुका अनुशासन, परिणाम क्या हुआ? लाखों पौधे लगाए कोई माली और कभी किसी एकाध पौधे में एकाध फूल खिल जाए, यह कोई माली की गरिमा हुई? कोई गौरव हुआ? यह कोई बगीचा हुआ?

रामनाम जान्यो नहीं

समस्त जीवन के प्रति जागने का प्रयोग

हमारे चारों तरफ जो जगत है, उसके प्रति हमें जाग्रत होना चाहिए, सोए हुए नहीं। हम उसके प्रति सोए हुए हैं। क्या आपको खयाल है, कभी आपने सड़क पर चलते हुए लोगों को पांच मिनट के लिए रुक कर होश से देखा हो? क्या आपको खयाल है कि दरख्तों के पास बैठ कर आपने पांच मिनट दरख्तों को होश से देखा हो? क्या आपको खयाल है, सुबह उगते सूरज को पांच क्षण ठहर कर आपने पूरे विवेक से देखा हो, पूरे जागरण से? रात के आकाश के तारे कभी देखे हों? सब भांति शांत और मौन होकर देखा हो? सब तरह के विचार को छोड़ कर, निर्विचार होकर, शांत होकर, चारों तरफ जो दुनिया फैली है, उसे पहचाना हो, उसके प्रति आंखें खोली हों?

नहीं खोली हैं, हम करीब-करीब सोए-सोए चले जाते हैं। चलते रहते हैं सोए-सोए। सोए-सोए चलने का, स्लीपिंग हालत में चलने का मतलब मेरा: दुनिया बाहर होती है, हम भीतर आक्युपाइड होते हैं, भीतर विचार में उलझे होते हैं।

विचार की एक धुंधली परत भीतर चलती रहती है। बाहर सड़क पर आप चले जा रहे हैं, लोग समझते हैं कि आप सड़क पर चल रहे हैं, और हो सकता है मन में आप आकाश में उड़ रहे हों। लोग समझ रहे हैं कि आप सड़क पर चल रहे हैं, और हो सकता है आप अपने घर में अपनी पत्नी से झगड़ा कर रहे हों। लोग समझते हैं कि आप सड़क पर चल रहे हैं, हो सकता है आप इजरायल में किसी की हत्या कर रहे हों। आप कहां हैं, चल कहां रहे हैं, ये दोनों दो बातें हैं। चित्त आपका कहीं और है, चलना कहीं और, तो चलना सोया हुआ होगा, जागा हुआ नहीं हो सकता। कोई भी क्रिया जागी हुई तब होती है, जब चित्त भी वहीं होता है जहां क्रिया होती है।

तो बाहर के जगत के प्रति जागरण का प्रयोग! कैसे करें?

कभी अचानक ठहर जाएं। चलते-चलते रास्ते पर रुक जाएं और जरा देखें—चारों तरफ क्या है? कभी घर की छत पर आंख खोल कर बैठ जाएं और देखें—ये तारे क्या हैं? कुछ सोचें न, सिर्फ देखें। क्योंकि आपने सोचा कि आप कहीं और गए। सोचा कि आप सोए। आपने सोचना शुरू किया कि जो मौजूद है वह हट गया और कोई चीज जो मौजूद नहीं है, आ गई।

एक गुलाब के फूल के पास आप बैठे हैं, और आपने सोचना अगर शुरू कर दिया गुलाब के फूल के बाबत, तो वह जो फूल आपके सामने है, उसके प्रति आप सो गए। हो सकता है आपने गुलाब के फूल पर जो कविताएं पढ़ी हों, वे याद आ जाएं, और जिन मित्रों ने आपको गुलाब के फूल भेंट किए हों, वे याद आ जाएं, या गुलाब के फूल से जो-जो एसोसिएशन हों, जो-जो संबंध हों, वे याद आ जाएं, लेकिन यह गुलाब का फूल जो मौजूद है, इसके प्रति आप सो गए, आपका मन कहीं और गया।

चीजों के प्रति जागने का मतलब है: सोचें नहीं, देखें। और हम देखने में इतने असमर्थ हो गए हैं कि एक पति अपनी पत्नी, जिसके पास वह वर्षों से रह रहा है, उसको भी नहीं देख पाता। उसको भी उसने कभी आंख भर कर पूरी तरह देखा नहीं है। एक पिता अपने बेटे को कभी देखता नहीं कि पूरी तरह देखा हो—क्या है यह? एक मित्र अपने मित्र को नहीं देखता है। और आप हैरान हो जाएंगे, कभी जरा पांच मिनट आंख बंद कर लें और अपनी मां का चेहरा स्मरण करें। आप हैरान हो जाएंगे, आपको मां का चेहरा तक स्मरण नहीं आएगा। कभी देखा ही नहीं ठीक से, स्मरण कैसे आएगा? पांच मिनट आंख बंद करके खयाल करें—मेरी मां का चेहरा कैसा? तो सब रेखाएं धुंधली हो जाएंगी, वहां कुछ दिखाई नहीं पड़ेगा। बड़ी हैरानी होगी कि मां का चेहरा भी मुझे स्पष्ट, मेरी स्मृति में नहीं है। क्यों? हां, ऐसे अगर खयाल न करें तो शायद आपको यह खयाल होगा कि मुझे याद है अपनी मां का चेहरा। लेकिन आज ही आप जरा कोशिश करना आंख बंद करके, तो आपको पता चलेगा कि सब रेखाएं मिट जाती हैं, बिगड़ जाती हैं। मां का चेहरा भी पकड़ में नहीं आता कि ठीक-ठीक कैसा है? मां की आंख कैसी थी? कैसी है? क्या उसकी आंखों में भाव हैं, वे कुछ भी न पकड़ेंगे। कभी आपने देखी नहीं है गौर से। किसने देखी है अपनी मां की आंख को गौर से? जिसे हम प्रेम करते हैं, उसको भी हमने कभी देखा थोड़े ही है। उसके पास से निकल जाते हैं सोए-सोए, दूसरी पच्चीस बातें सोचते हुए। उसके पास बैठे रहते हैं, जिस मित्र को हम प्रेम करते हैं, उसको गले से लगाए बैठे रहते हैं, लेकिन हमारा मन तो न मालूम कहां होता है। इसलिए दिखाई हमें पड़ता है कि हम किसी को गले से लगाए हैं, लेकिन हमारे बीच हजारों मीलों का फासला होता है, क्योंकि हम कहीं और होते हैं। ऐसा सारा जीवन सोया-सोया है। इस सोए-सोए जीवन में जब हम बाहर के प्रति ही नहीं जाग सकते, तो भीतर के प्रति क्या जागेंगे, वह तो बहुत कठिन बात है।

तो पहला सूत्र है: बाहर के प्रति जागना। जो भी बाहर दिखाई पड़े—बहुत है बाहर, क्या नहीं है बाहर—उसे बहुत ध्यान से देखना, बहुत ध्यान से सुनना, सारी इंद्रियों का अत्यंत ध्यान से, बहुत इंटेंसिवली उपयोग करना। भोजन करते वक्त पूरी तरह स्वाद लेना जरूरी है; आंख खोल कर फूल को देखते वक्त पूरी तरह उसके सौंदर्य को पी लेना जरूरी है; संगीत सुनते वक्त उसकी ध्वनियों को कानों के पूरे-पूरे प्राणों तक पहुंच जाना जरूरी है; किसी का हाथ हाथ में लें, तो उसका हाथ हाथ से जुड़ जाना जरूरी है। इतनी समग्रता से, इतने होश से, इतनी तन्मयता से जब कोई व्यक्ति बाहर के जीवन में जीना शुरू करता है, तो एक अवेयरनेस, एक जागरण, एक ज्योति उसके भीतर जागनी शुरू होती है।

अपने माहिं टटोल, प्रवचन 8

जो हो गया उसकी चिंता
जो नहीं हो पाया उसकी चिंता
जो हो पायेगा या नहीं, उसकी भी चिंता...

क्या है चिंता का मूल कारण

कैसे हमारा चित्त चिंताओं से मुक्त हो?

लोग आमतौर से कहते हैं कि हम चिंता छोड़ना चाहते हैं, लेकिन अब तक मैंने ऐसे बहुत कम लोग देखे, जो सच में ही चिंता छोड़ना चाहते हैं। कहते हैं जरूर, लेकिन कहने से किसी को भूल में पड़ने की जरूरत नहीं है। सच तो यह है कि वे कहते इसलिए हैं कि यह कहकर वे और एक नई चिंता अपने लिए पैदा करते हैं, कि मैं चिंता छोड़ना चाहता हूं! बस, और कुछ नहीं करते। एक नई चिंता, एक धार्मिक चिंता, एक नई अशांति कि मुझे शांति चाहिए!

लेकिन चिंता कोई छोड़ना नहीं चाहता। गहरे में चिंता छोड़ना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि चिंता छोड़ने का अर्थ अहंकार को छोड़ने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं होता है। अहंकार कोई भी नहीं छोड़ना चाहता। चिंता सभी छोड़ना चाहते हैं। और चिंता के सब फूल-पत्ते अहंकार में लगते हैं।

गीता दर्शन दसवां अध्याय, प्रवचन 9

सच में ही चिंता छोड़ना चाहते हैं?
तो उपाय बहुत सरल है

सभी लोग कहते हैं, हम चिंता छोड़ना चाहते हैं, लेकिन अहंकार कोई नहीं छोड़ना चाहता है। इसलिए और एक नई चिंता सिर पर सवार हो जाती है कि चिंता कैसे छोड़ें! लेकिन आपको अगर कोई सच में ही कहे कि चिंता छोड़ने की यह सरल-सी, बहुत सरल-सी कीमिया है, कि आप अपने को कर्ता मत मानें और फिर आप चिंता करके दिखा दें, तो मैं समझूं। आप चौबीस घंटे के लिए तय कर लें कि मैं अपने को कर्ता नहीं मानूंगा। फिर आप चौबीस घंटे में चिंता करके बता दें, तो मैं समझूं कि आपने एक चमत्कार किया है। यह हो नहीं सकता।

चिंता आती ही उसी क्षण में है, जहां मैं कर्ता मानता हूं। जहां मैं कर्ता नहीं मानता, चिंता का कोई सवाल नहीं है। तब मैं इस विराट प्रवाह का एक अंग हो जाता हूं। और करने का सारा भार विराट पर हो जाता है, मुझ पर नहीं। फिर अच्छा हो, तो उसका है; और बुरा हो, तो उसका है। और जीवन आए, तो उसका है। मृत्यु आए, तो उसकी है। बीमारी हो तो, स्वास्थ्य हो तो, सुख हो तो, दुख हो तो; जो भी हो, उसका है। मैं उसका एक हिस्सा हूं। फिर आपको चिंता करने का उपाय नहीं बचता।

गीता दर्शन दसवां अध्याय, प्रवचन 9

चिंता महत्वाकांक्षा का हिस्सा है

महत्वाकांक्षा न छोड़ोगे तो चिंता नहीं छूट सकती

एक सज्जन मेरे पास आए। वे कहने लगे: बहुत चिंता मन में रहती है, नींद भी नहीं आती। किसी तरह मेरी चिंता से मुझे छुटकारा दिलवा दें। मैंने तो सुना है कि ध्यान से चिंताएं मिट जाती हैं।

मैंने उनसे पूछा कि जहां तक मैं समझता हूं, चिंता असली बात नहीं हो सकती। चिंता कभी असली बात नहीं होती। चिंता किस बात की होती है, वह मुझे कहो। चिंता अपने आप तो नहीं होती, कोई चिंता ऐसे आकाश से तो नहीं उतरती। किस बात की है?

उन्होंने कहा: अब आपसे क्या छिपाना! पहले डिप्टी मिनिस्टर था, फिर मिनिस्टर हो गया। आज दस साल से मिनिस्टर हूं। चीफ मिनिस्टर... मेरे पीछे के लोग चीफ मिनिस्टर हो गए हैं। और मैं चीफ मिनिस्टर होने के पीछे पड़ा हूं, वह हल नहीं हो रहा है। वही मेरी चिंता है। आप मुझे चिंता से छुड़ा दें। एक दफे मेरी चिंता छूट जाए, तो मैं इन सबको दिखा दूं करके। क्योंकि इसी चिंता की वजह से मैं बीमार भी रहता हूं, अस्वस्थ भी रहता हूं। और जितनी ताकत लगानी चाहिए प्रतिस्पर्धा में, उतनी नहीं लगा पाता। दूसरे जो मेरे पीछे आए, वे आगे निकलते जा रहे हैं। और मैं जेल भी गया, बयालीस में भी गया, और उसके पहले भी गया। और डंडे भी खाए और सब तरह का कष्ट सहा। और अभी तक चीफ मिनिस्टर नहीं हुआ। और पीछे से लफंगे आए, जो न कभी जेल गए, न कभी डंडे खाए, न कोई कष्ट झेला, वे चीफ मिनिस्टर हो गए हैं। तो मैं क्या करूं?

मैंने उनसे कहा कि देखो, तुम कहीं और जाओ। क्योंकि जो मैं कहूंगा वह तुम झेल न सकोगे। महत्वाकांक्षा न छोड़ोगे तो चिंता नहीं छूट सकती। चिंता महत्वाकांक्षा का हिस्सा है। और महत्वाकांक्षा भी बहुत गहरे में बुनियादी नहीं है, अहंकार ही बुनियादी है।

अपने रोगों को जरा पकड़ना, खोजना। तुम बड़े हैरान हो जाओगे कि तुम्हारे रोग वे नहीं हैं जैसे दिखाई पड़ते हैं। रोग के पीछे रोग हैं। उनके पीछे और रोग हैं। और जब तक बुनियाद न पकड़ ली जाए, तब तक कोई रूपांतरण नहीं होता।

का सोवै दिन रैन, प्रवचन 11

जो हो ही चुका उसकी क्या चिंता?

जो अभी हुआ ही नहीं, उसकी क्या चिंता?

मन इतना पागल है कि अतीत के संबंध में भी सोचता है कि ऐसा क्यों न किया? ऐसा क्यों कर लिया? अब अतीत तो गया हाथ के बाहर। अब कुछ किया भी नहीं जा सकता। किए को अनकिया नहीं किया जा सकता। अब अतीत में कोई तरमीम, कोई सुधार, कोई संशोधन नहीं हो सकता। मगर मन उसका भी सोचता है कि फलां आदमी ने ऐसी बात कही थी, काश! हमने ऐसा उत्तर दिया होता!

अब तुम क्यों समय गंवा रहे हो? वक्त जा चुका। जो उत्तर दिया—दिया। जो कहना था—हो गया। जो करना था—हो गया। अब तुम क्या कर सकते हो? अतीत को बदला नहीं जा सकता। लेकिन आदमी अतीत की भी चिंता करता है।

बैठे हैं लोग; सोच रहे हैं कि ऐसा किया होता, वैसा किया होता। इस स्त्री से विवाह न किया होता, उस स्त्री से विवाह कर लिया होता। और उस स्त्री से किया होता, तो भी तुम यही सोचते होते। कोई फर्क न पड़ता। अतीत की चिंता तो बिलकुल व्यर्थ है। क्योंकि जो हो ही चुका—हो ही चुका। उसकी क्या चिंता? और भविष्य की चिंता भी व्यर्थ है, क्योंकि जो अभी नहीं हुआ—अभी हुआ ही नहीं—उसकी क्या चिंता? उसकी चिंता से क्या होगा?

तुम्हारे हाथ में क्या है? एक श्वास भी तुम्हारे हाथ में नहीं। कल सूरज उगेगा भी कि नहीं उगेगा—इसका भी कुछ पक्का नहीं। कल सुबह होगी भी या नहीं होगी—इसका भी कुछ पक्का नहीं। तुम होओगे कल या नहीं होओगे—कुछ पक्का नहीं। मगर बड़ी योजनाएं, बड़ी चिंताएं...। यह इसलिये कि चारों ओर देख-देखकर भी तुम कुछ समझते नहीं। बस इतना समझ लिया, फिर कैसी चिंता?

नहीं सांझ नहीं भोर, प्रवचन 9

चिंता है कर्ता की छाया

जितना बड़ा तुम्हारा कर्तृत्व होगा, उतनी ही चिंता होगी

पूरब की मनीषा ने जो गहरे सूत्र खोजे, उनमें एक है कि जीवन एक अभिनय है, नाटक है, लीला है—इसे गंभीरता से मत लो। जो वह करवाए, कर लो। जो वह दिखलाए, देख लो। तुम अछूते बने रहो, तुम कुंआरे बने रहो। और तब तुम्हारे जीवन में कोई श्रम न होगा, क्योंकि कोई तनाव न होगा। कर्म तो होगा, श्रम न होगा। श्रम न होगा, कर्म होगा—इसका अर्थ हुआः कर्म तो होगा, कर्ता न होगा। जब कर्ता होता है तो श्रम होता है, तब चिंता होती है। अब कर्ता तो परमात्मा है, हार-जीत उसकी है, सफलता-असफलता उसकी है। तुम तो सिर्फ एक उपकरण-मात्र हो, निमित्त-मात्र। सब चिंता खो जाती है।

चिंता पैदा होती है कर्ता के भाव से। जैसे ही तुम स्वीकार कर लेते हो कि मैं कर्ता नहीं हूं, फिर कैसी चिंता? चिंता है कर्ता की छाया। तुम चिंता तो छोड़ना चाहते हो, कर्तृत्व नहीं छोड़ना चाहते। तुम रहना तो चाहते हो कर्ता, कि दुनिया को दिखा दो कि तुमने यह किया, यह किया, यह किया; कि इतिहास में नाम छोड़ जाओ कि कितना काम तुमने किया! लेकिन तुम चाहते हो, चिंता न हो। यह असंभव की तुम मांग करते हो। जितना बड़ा तुम्हारा कर्तृत्व होगा, उतनी ही चिंता होगी। जितना बड़ा तुम्हारा अहंकार होगा, उतनी ही तुम्हारी चिंता होगी। निश्चिंत होना हो तो निरहंकारी हो जाओ। लेकिन निरहंकारी का अर्थ ही होता है, एक ही अर्थ होता है कि तुम कर्ता मत रहो। तुम जगह दे दो परमात्मा को—उसे जो करना है करने दो। तुम्हारे हाथ उसके भर रह जाएं; तुम्हारी आंखें उसकी आंखें हो जाएं; तुम्हारी देह में वह विराजमान हो जाए, तुम मंदिर हो जाओ। उसे करने दो जो करना है। तब तुम्हारे जीवन में एक बड़ा नैसर्गिक सौंदर्य होगा, एक प्रसाद होगा! तुम हार जाओगे, तो भी तुम निश्चिंत सो जाओगे। तुम जीत जाओगे, तो भी तनाव न होगा मन में, तो भी तुम निश्चिंत सो जाओगे। क्योंकि तुम अब अपने सिर पर लेते ही नहीं।

तुम्हारी हालत ऐसी हो जाएगी जैसे एक छोटा-सा बच्चा अपने बाप का हाथ पकड़ कर जाता है। जंगल है घना, बीहड़ है, पशु-पक्षियों का डर है—बाप चिंतित है, बेटा मस्त है! वह बड़ा ही मस्त है, जंगल देख कर उसके आनंद का ठिकाना नहीं। वह हर चीज के संबंध में प्रश्न पूछ रहा है। 'यह फूल क्या है?'...शेर भी सामने आ जाए तो बेटा मस्ती से खड़ा रहेगा। उसे क्या फिक्र है? बाप के हाथ में हाथ।

एक जापानी कथा है। एक युवक विवाहित हुआ। अपनी पत्नी को ले कर—समुराई था, क्षत्रिय था—अपनी पत्नी को लेकर नाव में बैठा। दूसरी तरफ उसका गांव था। बड़ा तूफान आया, अंधड़ उठा, नाव डांवांडोल होने लगी, डूबने-डूबने को होने लगी। पत्नी तो बहुत घबड़ा गई। मगर युवक शांत रहा। उसकी शांति ऐसी थी जैसे बुद्ध की प्रतिमा हो। उसकी पत्नी ने कहा, तुम शांत बैठे हो, नाव डूबने को हो रही, मौत करीब है! उस युवक ने झटके से अपनी तलवार बाहर निकाली, पत्नी के गले पर तलवार लगा दी। पत्नी तो हंसने लगी। उसने कहाः क्या तुम मुझे डरवाना चाहते हो?

पति ने कहाः तुझे डर नहीं लगता? तलवार तेरी गर्दन पर रखी, जरा-सा इशारा कि गर्दन इस तरफ हो जाएगी।

उसने कहाः जब तलवार तुम्हारे हाथ में है तो मुझे भय कैसा?

उसने तलवार वापिस रख ली। उसने कहाः यह मेरा उत्तर है। जब तूफान-आंधी उसके हाथ में है तो मैं क्यों परेशान होऊं? डुबाना होगा तो डूबेंगे, बचाना होगा तो बचेंगे। जब तलवार मेरे हाथ में है तो तू नहीं घबराती। मुझसे तेरा प्रेम है, इसलिए न! कल विवाह न हुआ था, उसके पहले अगर मैंने तलवार तेरे गले पर रखी होती तो? तो तू चीख मारती। आज तू नहीं घबड़ाती, क्योंकि प्रेम का एक सेतु बन गया। ऐसा सेतु मेरे और परमात्मा के बीच है, इसलिए मैं नहीं घबड़ाता। तूफान आए, चलो ठीक, तूफान का मजा लेंगे। डूबेंगे, तो डूबने का मजा लेंगे। क्योंकि सब उसके हाथ में है, हम उसके हाथ के बाहर नहीं हैं। फिर चिंता कैसी?

और कोई ढंग से चिंता पैदा नहीं होती, बस चिंता एक ही है कि तुम कर्ता हो। कर्ता हो तो चिंता है, चिंता है तो दुख। ऐसा जिसने निश्चयपूर्वक जाना, अनुभव से निचोड़ा—वह व्यक्ति सुखी हो जाता है, शांत हो जाता है, उसकी सारी स्पृहा समाप्त हो जाती है।

अष्टावक्रः महागीता, प्रवचन 31

अतीत का बोझ तुम्हारी चिंता है

तुम किए हुए की चिंता करते हो, अनकिए की चिंता करते हो...

तुमने देखा कभी, तुम उन कर्मों का तो हिसाब रखते ही हो जो तुमने किए; जो तुम नहीं कर पाए उनके लिए भी चिंतित होते हो! तुमने मूढ़ता का कोई अंत देखा? यह गणित को समझो। कल तुम किसी को गाली नहीं दे पाए, उसकी भी चिंता चलती है। दी होती तो चिंता चलती, समझ में आता है। दे नहीं पाए, मौका चूक गए; अब मिले मौका दुबारा, न मिले मौका दुबारा; समय वैसा हाथ आए न आए—अब इसकी चिंता चलती है। तुम किए हुए की चिंता करते हो, अनकिए की चिंता करते हो। तुम जो-जो नहीं कर पाए जीवन में, वह भी तुम्हारा पीछा करता है।

तुम अतीत में ही जिये चले जाते हो, इसीलिये तुम्हारी यह सारी चिंता है। जिस व्यक्ति ने अतीत को सिर से उतार कर रख दिया, उसके पंख फैल जाते हैं, वह खुले आकाश में उड़ने लगता है। उस पर जमीन की कशिश का कोई प्रभाव नहीं रह जाता, वह आकाशगामी हो जाता है।

बोझ तुम्हारे सिर पर अतीत का है। और अतीत के बोझ के कारण भविष्य की आकांक्षा पैदा होती है। जो नहीं कर पाए, भविष्य में करना है। जो कर लिया, और भी अच्छी तरह कर सकते थे—उसको भविष्य में करना है।

भविष्य क्या है? तुम्हारे अतीत का ही सुधरा हुआ रूप, सजा-संवारा, और व्यवस्थित किया। अब की बार मौका आएगा तो और अच्छी तरह कर लोगे। अतीत का बोझ जो ढोता है, वही भविष्य के पीछे भी दौड़ता रहता है। जिसने अतीत को उतार दिया, उसका भविष्य भी गया। वह जीता शुद्ध वर्तमान में। और वर्तमान में होना परमात्मा में होना है। फिर किसका भय! फिर कैसी वासना! फिर कैसी अशांति! फिर कैसी चिंता!

अष्टावक्र : महागीता, प्रवचन 31

तुम अपनी मर्जी को थोपने की कोशिश कर रहे हो जीवन पर यही तुम्हारी चिंता है

चिंता क्या है? चिंता यह है कि जैसा हो रहा है उससे अन्यथा होना चाहिए। बेटा मर गया, नहीं मरना था; यह चिंता है। दिवाला निकल गया, नहीं निकलना था; यह चिंता है। जैसा हुआ, वैसा नहीं होना था; और जैसा हो रहा है, वैसा नहीं होना चाहिए। तुम अपनी मर्जी को थोपने की कोशिश कर रहे हो जीवन पर। यही तुम्हारी चिंता है। फिर इससे तुम परेशान हो। फिर इस परेशानी को भीतर ढोते हुए तुम ध्यान करने बैठते हो। वह चिंता तुम्हारी जो थी, पीछे रहेगी। वह तुम्हारे ध्यान को भी विकृत कर देगी। तब तुम कैसे शांत हो सकोगे?

शांति का एक ही गुर है। और अगर यह सूत्र तुम्हें ठीक से समझ में आ जाए, तो पूरब की सारी खोज समझ में आ सकती है। पूरब की सारी खोज यह है कि जो हो रहा है उसे स्वीकार कर लो। टोटल एक्सेप्टीबिलिटी।

तुम स्वीकार कर लो जीवन जैसा हो। परमात्मा ने दिया है, वही जाने। तुम इंकार मत करो। दुख आए तो दुख को भी स्वीकार कर लो कि उसकी मर्जी। और अहोभाव रखो, धन्यभाव रखो कि अगर उसने दुख दिया है तो जरूर कोई राज होगा, कोई अर्थ होगा, कोई रहस्य होगा। तुम शिकायत मत करो। तुम धन्यवाद से ही भरे रहो। वह तुम्हें जैसा रखे। गरीब, तो गरीब। अमीर, तो अमीर। सुख में, तो सुख में। दुख में, तो दुख में। एक बात तुम्हारे भीतर सतत बनी रहे कि मैं राजी हूं।

फिर चिंता किसको? फिर बोझ किसको? जब तुम बदलना ही नहीं चाहते कुछ, जब तुम उससे राजी हो, उसकी मर्जी में राजी हो, जब तुम्हारी अपनी कोई मर्जी नहीं, तब कैसी बेचैनी! तब कैसा विचार! तब सब हलका हो जाता है। पंख लग जाते हैं। एक गहन शांति, एक वर्षा होने लगती है भीतर, जहां कोई तनाव नहीं, कोई चिंता नहीं।

एक ओंकार सतनाम, प्रवचन 1

चिंता का कारण :

प्रवाहमान जगत में चीजों को रोक लेने की चाह

जगत एक अनित्य प्रवाह है। यहां जन्म भी मृत्यु से जुड़ा है और जवानी भी बुढ़ापे से जुड़ी है। यहां सुख दुख से जुड़ा है। यहां प्रेम घृणा से जुड़ा है। यहां मित्रता शत्रुता से जुड़ी है। और जो भी चाहता है कि चीजों को ठहरा लूं, वह दुख और पीड़ा में पड़ जाता है।

आदमी की चिंता यही है कि जहां कुछ भी नहीं ठहरता, वहां वह ठहराने का आग्रह करता है। अगर मुझे यश है, तो मैं सोचता हूं, मेरा यश ठहर जाए। अगर मेरे पास धन है, तो मैं सोचता हूं, मेरे पास धन ठहर जाए। अगर मेरे पास जो भी है, मैं चाहता हूं वह ठहर जाए। अगर मुझे कोई प्रेम करता है, तो मैं चाहता हूं, यह प्रेम चिर हो जाए। सभी प्रेमी की यही आकांक्षा है कि प्रेम शाश्वत हो जाए। इसलिए सभी प्रेमी दुख में पड़ते हैं। क्योंकि इस जगत में कुछ भी शाश्वत नहीं हो सकता, प्रेम भी नहीं।

यहां सभी बदल जाता है। जगत का स्वभाव बदलाहट है। इसलिए जिसने भी चाहा कि कोई चीज ठहर जाए, वह दुख में पड़ेगा। क्योंकि हमारी चाह से जगत नहीं चलता। जगत का अपना नियम है। वह अपने नियम से चलता है।

अब हम बैठ गए एक वृक्ष के नीचे और सोचने लगे कि यह हरी पत्ती सदा हरी रह जाए, तो हम मुश्किल में पड़ेंगे, इसमें पत्ती का कोई कसूर नहीं। इसमें वृक्ष का कोई हाथ नहीं। इसमें जगत की व्यवस्था ने कुछ भी नहीं किया। हमारी चाह ही हमें दिक्कत में डाल देती है कि पत्ती सदा हरी रह जाए। पत्ती तो हरी है ही इसीलिए कि कल वह सूखेगी। उसका हरा होना सूखने की तरफ यात्रा है, सूखने की तैयारी है।

अगर हम हरी पत्ती में सूखी पत्ती को भी देख लें, तब हमें पता चलेगा कि जगत अनित्य है। अगर हम पैदा होते बच्चे में भी मरते हुए बूढ़े को देख लें, तब हमें पता चलेगा कि जगत अनित्य है। अगर हम जगते हुए प्रेम में उतरता हुआ प्रेम भी देख लें, तब हमें समझ में आएगा कि जगत अनित्य है। सब चीजें ऐसी ही हैं। लेकिन हम क्षण में जीते हैं, क्षण को देख लेते हैं और उसको थिर मान लेते हैं, आगे-पीछे को भूल जाते हैं। वह आगे-पीछे को भूल जाने से बड़ा कष्ट, बड़ी चिंता पैदा होती है।

हमारी चिंता, मनुष्य की चिंता का मूल आधार यही है कि जो रुक नहीं सकता, उसे हम रोकना चाहते हैं। जो बंध नहीं सकता, उसे हम बांधना चाहते हैं। जो बच नहीं सकता, उसे हम बचाना चाहते हैं। मृत्यु जिसका स्वभाव है, उसे हम अमृत देना चाहते हैं। बस, फिर हम चिंता में पड़ते हैं। एंग्जाइटी, चिंता यही है कि मैं जिसे प्रेम करता हूं, वह प्रेम कल भी ठहरेगा या नहीं! कल जिसे मैंने प्रेम किया था, वह आज बचा है कि नहीं बचा! कल जिसने मुझे आदर दिया था, वह आज भी मुझे आदर देगा कि नहीं देगा! कल जिन्होंने मुझे भला माना था, वे आज भी मुझे भला मानेंगे कि नहीं मानेंगे! बस, चिंता यही है।

इसलिए जब-जब दुनिया में पदार्थवाद का आग्रह बढ़ जाता है, तो चिंता बढ़ जाती है। पश्चिम अगर आज ज्यादा चिंतित है पूरब की बजाय, तो उसका और कोई कारण नहीं है।

कारण एक है कि पश्चिम की दृष्टि पदार्थ पर है, और वह सोचता है कि पदार्थ के जगत में थिरता मिल जाए। वह थिरता मिल नहीं सकती। वह मिल नहीं सकती, वह असंभव है।

ऋषि कहते हैं, जगत अनित्य है। इसलिए जगत में नित्य को बनाने की चेष्टा पागलपन है। अनित्यता की स्वीकृति समझ है, प्रज्ञा है। और जो व्यक्ति यह जान ले कि जगत अनित्य है, जान ले, सुनकर नहीं, पढ़कर नहीं; अनुभव की पाठशाला से सीख ले कि जगत अनित्य है...। और चारों तरफ पाठशाला खुली है। सब तरफ अनित्यता है और आदमी अदभुत है कि वह नित्य मानकर जी रहा है। कुछ भी नहीं बचता, सब बदल जाता है। फिर भी अंधापन अदभुत है। आंखें हम बंद किए बैठे हैं। जहां चारों तरफ प्रवाह चल रहा है, वहां हम सपने संजोए बैठे हैं बीच में कि सब बच रहेगा, सब बच रहेगा। ऋषि कहता है, आंख खोलो और तथ्य को देखो।

आंख खोल कर तुम देख सको कि सब कुछ अनित्य है, कुछ भी ठहराया नहीं जा सकता, तो ठहरा लेने का तुम्हारा प्रयत्न ही छूट जाये—चिंता से तुम्हारी मुक्ति हो।

निर्वाण उपनिषद, प्रवचन 8

जब मैं कर्ता नहीं हूं तो चिंता के पैदा होने का कोई कारण नहीं उठता

सिर्फ देखने वाले रह जाएं; जो भी हो रहा है, देखने वाले रह जाएं। हार हो, तो देखें कि मैं देख रहा हूं हार हो गई, और जीत हो तो देखें कि देख रहा हूं कि जीत हो गई। न तो मैं हारता हूं और न मैं जीतता हूं, मैं केवल देखता हूं।

चिंता को तो हम सभी नष्ट करना चाहते हैं। कौन है आदमी जो चिंता से मुक्त न हो जाना चाहता हो? लेकिन कर्ता से हम मुक्त नहीं होना चाहते। चिंता से मुक्त होना चाहते हैं, कर्ता से मुक्त नहीं होना चाहते। और कर्ता की छाया है चिंता। जो आदमी सोचता है मैं कर रहा हूं यह, वह चिंता से नहीं बच सकता। उस पर चिंता बढ़ती चली जाएगी। और जितना ही वह आदमी सोचेगा मैं कर रहा हूं, उतनी ही चिंता बढ़ती चली जाएगी।

पूरब के लोगों ने बड़ी तरकीबें खोजी थीं, उसमें एक तरकीब यह थी कि मैं नहीं कर रहा हूं, परमात्मा कर रहा है। यह एक ध्यान की व्यवस्था थी। यह व्यवस्था थी कि उसकी आज्ञा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता। ऐसा है नहीं कुछ। एक-एक पत्ते के लिए आज्ञा देनी पड़े उसको, तो अभी तक परमात्मा पागल हो जाता! कि एक-एक पत्ते को कहना पड़ेः हिलो! बंद हो जाओ!

नहीं, कोई परमात्मा एक-एक पत्ते को हिलाने-रोकने के लिए नहीं बैठा हुआ है। लेकिन इसका उससे कोई संबंध भी नहीं है। उसकी आज्ञा के बिना पत्ता नहीं हिलता, यह तो ध्यान की एक व्यवस्था थी, एक उपाय था। क्योंकि जो आदमी ऐसा मान लेता है, उसकी आज्ञा के बिना पत्ता भी नहीं हिलता, वह धीरे-धीरे मैं कर्ता हूं, यह भाव छोड़ने लगता है। कर्ता वह है, मैं कुछ भी नहीं हूं, उपकरण हूं। वह हिलाता है तो हिलता हूं, वह चलाता है तो चलता हूं, वह उठाता है तो उठता हूं।

जब लोग ऐसा सोचते थे कि उसके द्वारा सब हो रहा है और हम

केवल कठपुतलियां हैं, तो एक बड़ी घटना घटी थी इस दुनिया में, पूरब के मुल्क एकदम चिंतामुक्त हो गए थे। पूरब ने जितना निश्चिंत समय जाना है, जमीन पर और कहीं नहीं जाना गया। और अभी पश्चिम जितना चिंता से भरा हुआ समय जान रहा है, उतना चिंता से भरा समय भी कभी नहीं जाना गया। पर उसका कारण वही है, क्योंकि पश्चिम में ईश्वर संदिग्ध हो गया, भाग्य की धारणा व्यर्थ हो गई।

मैं नहीं कहता कि भाग्य की धारणा सही है। लेकिन भाग्य की जो उपाय-व्यवस्था थी, कि भाग्य सब कर रहा है तो फिर हम कर्ता नहीं रह जाते, वह समाप्त हो गया। पश्चिम में न कोई ईश्वर बचा, न कोई भाग्य बचा, न कोई नियति बची—सारा जिम्मा आदमी पर पड़ गया। मैं कर रहा हूं! जो भी कर रहा हूं, मैं कर रहा हूं! क्योंकि इसको हटाने के लिए कोई जगह न रही।

ईश्वर हो या न हो, इससे अंतर नहीं पड़ता, लेकिन अगर आप अपने कर्तृत्व को ईश्वर पर छोड़ सकें—न हो तो भी—तो भी आप पर तो परिणाम शुरू हो जाता है कि आप निश्चिंत हो जाते हैं।

पश्चिम में चिंता घनी हो गई है। अमरीका के मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि चार आदमियों में तीन आदमी मानसिक रूप से रुग्ण हैं। चार आदमियों में तीन आदमी! यह चौथा आदमी भी कितनी देर तक इन तीन के बीच बचेगा! ये तीन सब उपाय कर रहे हैं उसको भी डुबा देने के। बड़ी संख्या हो गई, चार में से तीन आदमी अगर मानसिक रूप से अस्तव्यस्त और रुग्ण हो गए हैं। क्या कारण होगा? पूरब ने इतने पागल कभी पैदा नहीं किए! पश्चिम ने इतने पागल पैदा किए!

पश्चिम में पागलपन बढ़ता जाता है, और धीरे-धीरे स्वीकृत होता जाता है। फ्रायड ने तो अंत में यह स्वीकार कर लिया जीवन भर के अनुसंधान के बाद कि आदमी को सुधारने का वस्तुतः कोई उपाय नहीं है; आदमी थोड़ा न बहुत पागल रहेगा ही। असमर्थता स्वीकार कर ली। और फ्रायड स्वीकार करे असमर्थता, तो बड़ी कीमत की है। क्योंकि यह आदमी पचास साल जिंदगी के आदमी के मन के अनुसंधान में ही लगाया है; गहरी से गहरी खोज की है। उसका कहना है, कोई उपाय नहीं है कि आदमी बिलकुल स्वस्थ किया जा सके।

पर फ्रायड को पता नहीं कि स्वस्थ आदमी जमीन पर रहे हैं; स्वस्थ समाज भी रहे हैं। पर उन समाजों की धारणाएं दूसरी थीं। उसमें बड़ी से बड़ी गहरी धारणा थी यह कि कर्ता मैं नहीं हूं। इसका उन्होंने उपाय कर लिया था : कर्ता परमात्मा है, भाग्य है, विधि है, नियति है—कोई और है। मैं हूं केवल एक उपकरण मात्र, एक पत्ते की तरह। हिलाता है हिलता हूं, नहीं हिलाता नहीं हिलता हूं; जिताता है जीत जाता हूं, हराता है हार जाता हूं; मेरा कुछ भी नहीं है।

इसके दोहरे परिणाम हुए। एक परिणाम तो यह हुआ कि जब मैं कर्ता नहीं हूं तो चिंता के पैदा होने का कोई कारण नहीं उठता। हार भी स्वीकृत हो जाती है, जीत भी स्वीकृत हो जाती है। तो जीत भी मेरी नहीं है, तो जीत से भी अहंकार निर्मित नहीं होता। और हार भी मेरी नहीं है, तो रात की नींद भी नष्ट नहीं होती; चिंता भी नहीं पकड़ती; मन में व्यथा भी नहीं आती। और भी बड़े मजे की बात है, कोई दूसरा आदमी जीत जाए तो ईर्ष्या भी नहीं पकड़ती। क्योंकि वह आदमी जीत गया, इससे कुछ बड़ा नहीं हो गया है; परमात्मा की मर्जी। उस आदमी का बड़प्पन नहीं है कुछ कि जीत गया है, और हम हार गए तो हम कुछ छोटे हैं; परमात्मा की मर्जी।

एक बड़ी शांत मानसिक अवस्था पैदा हो सकती है अगर कर्ता का भाव छूट जाए। जरूरी नहीं है कि आप परमात्मा को मानें तो ही छूटे। बुद्ध ने बिना परमात्मा को माने छोड़ दिया, थोड़ा कठिन है। महावीर ने बिना परमात्मा को माने छोड़ दिया, थोड़ा कठिन है।

अगर बिना परमात्मा को माने छोड़ना हो तो फिर आपको साक्षी-भाव को गहरा करना पड़े। सिर्फ देखने वाले रह जाएं; जो भी हो रहा है, देखने वाले रह जाएं। हार हो, तो देखें कि मैं देख रहा हूं हार हो गई, और जीत हो तो देखें कि देख रहा हूं कि जीत हो गई। न तो मैं हारता हूं और न मैं जीतता हूं, मैं केवल देखता हूं। सुबह आती है तो देख लेता हूं सुबह आ गई, सांझ होती है तो देख लेता हूं सांझ हो गई। रात का अंधेरा घिरता है तो मान लेता हूं कि अंधेरा घिर गया; सूरज निकलता है, प्रकाश हो जाता है तो जान लेता हूं कि प्रकाश हो गया। मैं अपनी ही जगह देखने वाला बना रहता हूं—चाहे रात हो और चाहे दिन, चाहे सुख हो चाहे दुख, चाहे हार चाहे जीत। तब फिर साक्षी में कोई ठहर जाए तो कर्ता विलीन हो जाता है; क्रिया आपकी नहीं रह जाती, क्रिया के केंद्र आप नहीं रह जाते; आप दृष्टि, दर्शन, ज्ञान के केंद्र हो जाते हैं। क्रिया आस-पास प्रकृति में होती रहती है।

महावीर कहते हैं, पेट को भूख लगती है, मैं देखता हूं। पैर में कांटा चुभता है, पीड़ा होती है पैर को, मैं देखता हूं। शरीर रुग्ण होता है, बीमारी आती है, मैं देखता हूं। मरते वक्त भी महावीर देखते रहेंगे कि शरीर मर रहा है। आप नहीं देख पाएंगे कि शरीर मर रहा है; आपको लगेगा मैं मर रहा हूं। जीवन भर का अभ्यास! जब सब क्रियाएं आपने कीं, तो मौत भी आपको ही करनी पड़ेगी। जब सभी कुछ आपने किया, तो फिर मृत्यु आप किस पर छोड़ेंगे! जिसने जीवन को छोड़ दिया, वह मृत्यु को भी छोड़ देता है। और जो जीवन को देखता रहा कि मैं साक्षी हूं, वह मृत्यु को भी देख लेता है कि मैं साक्षी हूं।

क्रिया का नाश हो जाए, अर्थात कर्ता खो जाए, तो चिंता का नाश हो जाता है।

अध्यात्म उपनिषद, प्रवचन 5

चिंता से मुक्त होने की कला है :

उस कला का नाम साक्षीभाव है, ध्यान है

योगी वही है जो चिंता से मुक्त हो जाये। चिंता से मुक्त होना अचिंत्य में लीन होने की प्रक्रिया है। कैसे चिंता से मुक्त होओगे? अगर चिंता से मुक्त होने की चेष्टा की, और चिंता में पड़ जाओगे। पुरानी चिंता तो रही ही रही, एक नयी चिंता और शुरू हो गयी, कि अब चिंता से कैसे मुक्त हों?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं: मन बड़ा अशांत है, शांति चाहिए। अब यह एक नयी अशांति शुरू हुई! मन अशांत था, वह तो था ही; अब शांति चाहिए। और शांत नहीं हो रहा है मन तो और मुश्किल हो गयी। इससे तो जो अशांत हैं और शांति नहीं चाहते हैं, वे ही कम अशांत हैं। कम-से-कम उनकी अशांति इकहरी है।

तो चिंता से मुक्त होने को नयी चिंता मत बना लेना। चिंता से मुक्त होने में तो सिर्फ एक इंगित है, चिंता से मुक्त होने की कला है; उस कला का नाम साक्षीभाव है, ध्यान है।

कोई चिंता नहीं करनी पड़ती चिंता से मुक्त होने के लिए। वह तो कीचड़ से कीचड़ धोना होगा। और कीचड़ मच जायेगी!

चिंता से मुक्त होने का तो एक ही उपाय है: साक्षी। जो भी भीतर चलता है, विचारों की तरंगें आती-जाती हैं, तुम देखते रहना। तुम पक्षपात न करना। तुम यह भी मत कहना कि यह अच्छा विचार यह बुरा विचार, यह पकड़ लूं यह छोड़ दूं। इसी से चिंता पैदा हो रही है—पकड़ने-छोड़ने से। तुम तो देखते रहना निष्पक्ष। जैसे कोई राह चलते लोगों को देखता है, ऐसे ही चित्त की राह पर चलते विचारों को तुम चुपचाप बैठ कर देखते रहना। अगर तुम एक घड़ी रोज इतना ही कर सको कि सिर्फ बैठ जाओ और देखते रहो...।

शांत होने की चेष्टा मत करना, नहीं तो और अशांत हो जाओगे। चिंता से छूटने की चिंता मत करने लगना। जो भी हो रहा है चित्त में—अशांति, चिंता, उपद्रव, व्यर्थ की बकवास, पागलपन—जो भी हो रहा है, चुपचाप इसे देखना। जैसे तुम दर्पण हो और दर्पण के सामने से जो भी निकल रहा है, उसकी छाया बन रही है। दर्पण को क्या लेना-देना है! कोई छाया बनने से दर्पण बिगड़ता तो नहीं, विकृत तो नहीं होता। कुरूप आदमी दर्पण के सामने खड़ा हो जाये तो दर्पण कुरूप तो नहीं हो जाता? और न सुंदर के खड़े होने से सुंदर हो जाता है। तो क्या फर्क पड़ता है, सुंदर खड़ा हो कि कुरूप खड़ा हो, दर्पण को क्या लेना-देना है? दर्पण अलिप्त भाव से देखता रहता है।

दर्पण की भांति अगर तुम एक घड़ी रोज बैठने लगो, तो तुम चकित हो जाओगे, बैठते-बैठते एक दिन अचानक एक क्रांति घट जाती है! चिंता विलीन हो जाती है। अचिंत्य में लीन हो जाता है। साधक साक्षी बनते-बनते चिंता से मुक्त हो जाता है, अचिंत्य में लीन हो जाता है।

मरौ हे जोगी मरौ, प्रवचन 17

ध्यान आया तो सारी चिंताएं गईं

ध्यान चिंता-मुक्ति है

आदमी सदा चिंतित रहा है। अब भी चिंतित है। कुछ ऐसा नहीं है कि अब का आदमी कुछ ज्यादा चिंतित हो गया है। ये सब भ्रांतियां हैं। इतनी ही चिंता थी। चिंता के कारण बदल गए हैं। आज से हजार साल पहले निश्चित ही कोई आदमी रात में ये नहीं सोचता था चिंतित होकर कि एक फियेट गाड़ी खरीदनी है। कैसे चिंता करता, फिएट गाड़ी होती ही नहीं थी। तो हमको लगता है कि आदमी निश्चिंत सोता होगा, क्योंकि फिएट गाड़ी की चिंता नहीं। मगर छकड़ा गाड़ी! क्या फर्क पड़ता है? छकड़ा गाड़ी होनी चाहिए एक। एक घोड़ा होना चाहिए मेरे पास शानदार! तुम सोच रहे हो कि एक इम्पाला गाड़ी हो, वह आदमी सोचता था कि एक घोड़ा हो। रात उतनी ही चिंता घोड़े से हो जाती थी, जितनी इम्पाला गाड़ी से होती है। कोई फर्क नहीं पड़ता।

तुम सोचते हो गरीब अमीर की चिंता में कुछ फर्क होते हैं? कोई फर्क नहीं होते। चिंता वही होती है, चिंता के आधार अलग-अलग होते हैं। चिंता के कारण अलग-अलग होते हैं, चिंता वही होती है।

सब सदियों में आदमी चिंतित रहा है। क्योंकि जब तक ध्यान न फल जाए तब तक चिंता चलती ही रहती है। ध्यान फले तो चिंता जाती है। फिर घोड़े गए, छकड़ा गाड़ी गई, सब गया। ध्यान आया तो सारी चिंताएं गईं। अमीर ध्यान करे तो चिंताएं चली जाती हैं, गरीब ध्यान करे तो चिंताएं चली जाती हैं। ध्यान चिंता-मुक्ति है। क्योंकि विचार-मुक्ति है। क्योंकि मन-मुक्ति है।

संतो, मगन भया मन मेरा, प्रवचन 14

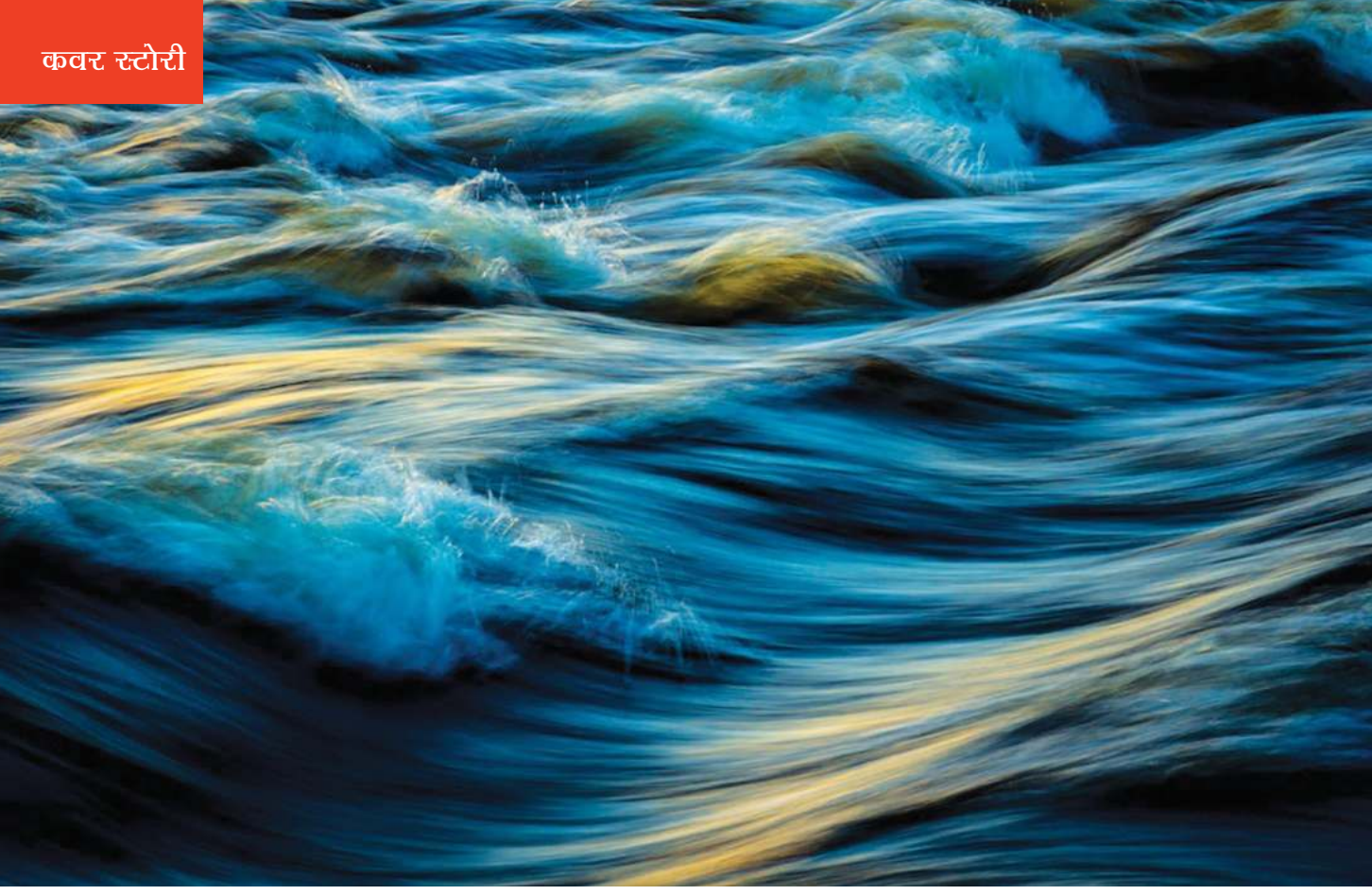

सब स्वयं हो रहा है :
यह समझते ही सब चिंतायें समाप्त हो जाती हैं

कोई भगवान बैठ कर यहां एक-एक चीज का हिसाब नहीं कर रहा है कि अब इस झाड़ को पानी चाहिए, और अब इस आदमी को रोटी चाहिए, और अब यह पत्ता पीला पड़ गया है, इसको गिराना चाहिए, और अब वसंत आया जा रहा है तो बीज डालने चाहिए, और यह चांद कहीं तिरछा न चला जाए, कहीं रास्ते से न चूक जाए, तो सब बैलगाड़ी को ठीक-ठीक हांकते रहना चाहिए, ऐसा कोई भगवान नहीं है जो व्यवस्था कर रहा है। यह व्यवस्था बड़ी स्वाभाविक है, कोई करने वाला नहीं है। यहां कोई बैठा हुआ बीच में इस सारे आयोजन को सम्हाल नहीं रहा है।

लोगों की भगवान के प्रति धारणाएं इसी तरह की हैं, वे यही सोच रहे हैं कि कोई सत्ताधारी आज्ञा दे रहा है, जगह-जगह फरमान निकाल रहा होगा कि अब ऐसा होने दो! अब ऐसा होने दो! अब रात हो जाने दो, अब दिन हो जाने दो! अब देर हुई जा रही है, अब जल्दी से सुबह करो, सूरज को निकालो।

कोई कहीं कर्ता नहीं है, सब हो रहा है। वैसी ही दशा तुम्हारी भी है, तुम्हारे भीतर भी सब हो रहा है, कर्ता कोई भी नहीं है। छोटे पैमाने पर तुम इस बड़े विराट का छोटा सा लक्षण हो। तुम अपने भीतर ही खोज कर देखो! भूख लगती है तब कोई भूख लगाता है? जब तुम श्वास भीतर लेते हो तो कोई श्वास भीतर लेता है? जब नींद आती है तो कोई नींद लगाता है? कब तुम बच्चे से जवान हो गए और कब जवान से बूढ़े हो गए, कोई कर रहा है? सब हो रहा है।

इस सूत्र को हृदय में सम्हाल कर रखना—सब हो रहा है। जैसे ही तुम्हें यह बात समझ में आ जाए कि सब हो रहा है, सारी चिंताएं समाप्त हो जाती हैं। चिंता यही है कि कहीं ऐसा न हो कि मैं कुछ चूक जाऊं, कुछ कर न पाऊं, कहीं वैसा न

हो जाए! चिंता कर्ता की छाया है।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, हम चिंता से कैसे मुक्त हों?

मैं उनसे कहता हूं: तुम प्रश्न ही गलत पूछते हो। पूछो, कर्ता से कैसे मुक्त हों? कर्ता रहेगा तो चिंता रहेगी। और अब तुम एक नई चिंता ले रहे हो सिर पर मोल कि चिंता से कैसे मुक्त हों? अब यह भी तुम्हें करके दिखाना है। अब यह और एक नया कर्ता पैदा होगा कि चिंता से मुक्त होना है।

समझो! कर्ता कोई भी नहीं है। यह सारा का सारा जो हो रहा है, स्वाभाविक है, सहज है, अपने से है, स्वयंभू है। जैसे ही यह बात समझ में आती है, एक विश्राम आ जाता है। फिर कोई चिंता नहीं; फिर जो होता है, ठीक ही होता है; जो होगा, ठीक ही होगा; जो हुआ, ठीक ही हुआ। इसलिए भक्त कोई पश्चात्ताप नहीं करता और न भविष्य की चिंता करता है, न योजना बनाता है। और भक्त के मन में कभी यह द्वंद्व नहीं उठता कि ऐसा कर लेते तो अच्छा होता। वैसा क्यों कह दिया? वैसा क्यों कर लिया? न, भक्त ने तो छोड़ दिया है अपने को विराट के साथ, अब जहां ले जाओ, जो करवाओ—जैसी उसकी मर्जी।

और ध्यान रखना, यह सब भाषा की बात है, जब मैं कहता हूं जैसी उसकी मर्जी। वहां कोई है नहीं जिसकी मर्जी है। मर्जी हो तो वह चिंता से मर जाए। कब का भगवान मर गया होता! जरा सोचो, तुम एक छोटा सा घर सम्हालते हो, मरे जा रहे हो, आत्महत्या का विचार कई दफे उठने लगता है। घर तुम्हारा बड़ा छोटा सा है, कुछ खास सम्हालना भी नहीं है; एक पत्नी है, दो बच्चे हैं, इन्हीं को सम्हालना है, ये ही तुम्हें काफी सताए डाल रहे हैं! तुम जरा परमात्मा की तो सोचो! कभी का या तो पागल हो गया होगा, या कभी की आत्महत्या कर ली होगी, या भाग गया होगा, संन्यासी हो गया होगा, दूर निकल गया होगा संसार से कि अब नहीं लौटना है कभी, सब त्याग करके चला गया होगा।

नहीं, वहां कोई भी नहीं है। वहां सन्नाटा है। और जिस दिन तुम इस सत्य को समझ लेते हो कि इतना विराट जगत बिना कर्ता के चल रहा है, उस दिन अपनी इस छोटी सी जिंदगी में क्यों यह कर्ता को बनाना, यह भी चलने दो, यह भी होने दो!

यह जो जगत में चीजों का प्रवाह है, यह स्वयंभू है, स्वयं घट रहा है—जैसे ही यह समझ उतरी, तुम चिंताओं के पार हुए।

अथातो भक्ति जिज्ञासा, प्रवचन 19

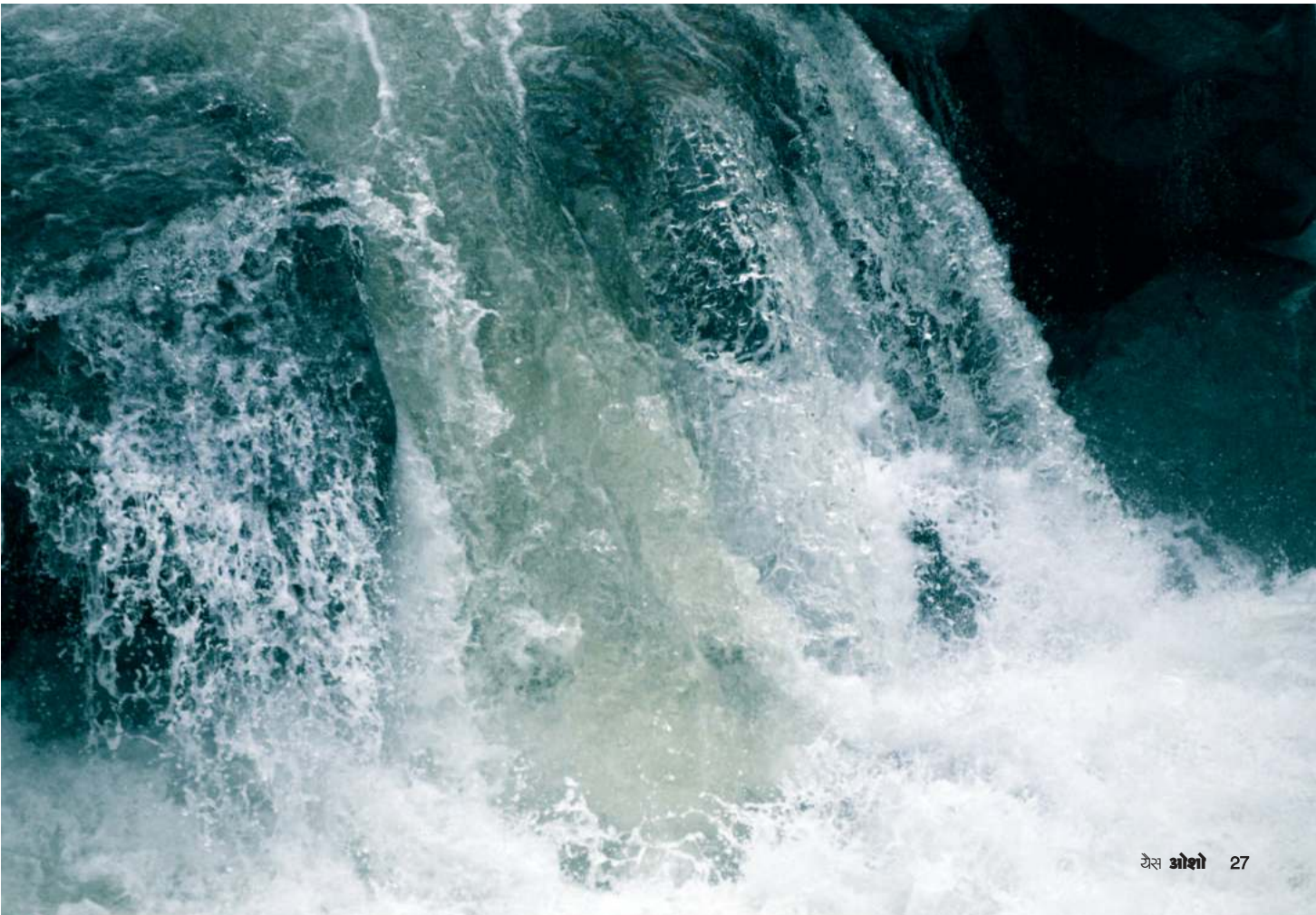

चिंता का अर्थ क्या है?

चिंता का अर्थ यह है कि बोझ मुझ पर है

जल में कमलवत—यही संन्यास की परिभाषा है। जल छोड़ कर भाग गए, फिर जल न छूए—इसमें क्या गुणवत्ता? जल में रहे और जल न छूए—तो गुणवत्ता।

रहो जगत में और राम तुम्हारे भीतर रहे—तो गुणवत्ता।

जैसे हो वैसे ही, जहां हो वैसे ही। कुछ और करना नहीं है। बाहर तो एक चीज भी उठा कर यहां-वहां नहीं रखनी है। पत्नी अपनी जगह है। बच्चे अपनी जगह हैं। काम अपनी जगह है। वह सब होता रहे, जैसा हो रहा है। नाटक समझो।

जैसे अभिनेता काम कर आता है। अभिनेता राम बन जाता है। सीता चोरी चली जाती है, तो रोता है। मंच पर झाड़ों से पूछता है कि मेरी सीता कहां? आंसू बहाता है। लेकिन यह कुछ भी छूता नहीं। क्योंकि सीता से क्या लेना-देना उसको? यह तो नाटक है। पर्दा गिरेगा, अपने घर चला जाएगा और मजे से सोएगा। एक बार भी खयाल न आएगा। रात सपना भी नहीं देखेगा कि मेरी सीता खो गई। रात उधेड़बुन में भी नहीं रहेगा—कि क्या करूं, क्या न करूं; कहां से पाऊं?

सीता से कुछ लेना-देना नहीं है। यद्यपि नाटक में पूरा-पूरा काम कर आया है। काम पूरी कुशलता से कर दिया है।

मैं उसी को संन्यस्त कहता हूं, जो जगत में अभिनय पूर्वक रहे। काम पूरा कर दे। पति हो, तो पति का अभिनय पूरा कर दो। पत्नी हो, तो पत्नी का अभिनय पूरा कर दो।

और मजा यह है कि अगर अभिनय समझ कर करो, तो ज्यादा कुशलता से पूरा कर सकोगे; क्योंकि कोई चिंता नहीं, कोई फिकर नहीं।

कर्ता बने—कि चिंता-फिकर आती है। असली राम को भी चिंता-फिकर आई होगी। सीता खो गई होगी, तो चिंतित हुए होंगे, परेशान हुए होंगे। मगर यह जो रामलीला का राम है, इसको कोई चिंता नहीं आती। इसे कोई फिकर ही नहीं। यह तो नाटक ही है।

अभिनय सीखो! अभिनय में निष्णात बनो—और तुम जल में कमलवत रह सकोगे।

और चिंता पकड़ती ही इसलिए है कि तुमने अपने को कर्ता मान लिया; नहीं तो चिंता क्या है। रामलीला के राम को चिंता नहीं पकड़ती; तुम्हें चिंता पकड़ती है। चिंता पकड़ती है, क्योंकि कर्ता हो गए।

कर्ता हुए कि चिंता पकड़ी। कर्ता मत बनो। तुम तो अपने को इतना ही जानो कि एक अभिनय मिला है, इसे पूरा कर देना है। पूरी कुशलता से पूरा कर देना। अपना पूरा कौशल्य, अपनी पूरी प्रवीणता, अपनी पूरी बुद्धि—सबसे पूरा कर देना। मगर ध्यान रखना है कि मैं कर्ता नहीं हूं।

तब तुम चकित हो जाओगे। यह जगत फिर पकड़ेगा नहीं। यह जगत पास-पास रह कर भी दूर-दूर रहेगा। यह जगत सब तरफ से तुम्हें घेरे हुए भी तुम्हें छूएगा नहीं। तुम अस्पर्शित रह जाओगे। तुम इस पर कमलवत तैरने लगोगे।

लेकिन कर्ता के भाव से चिंता पैदा होती है—कि कल सुबह क्या करूं? कैसे दुकान चलाऊं? कैसे पैसा कमाऊं? मिलेगा, नहीं मिलेगा? ऐसा करना है, वैसा करना है?

तुम कर्ता हुए कि चिंता आई। हजार चिंताएं आ जाएंगी। दुकान चलेगी कि नहीं! पैसा आएगा कि नहीं? पत्नी बीमार है—ठीक होगी कि नहीं? बेटा परीक्षा दे रहा है—पास होगा कि नहीं? ऐसा होगा कि नहीं; वैसा होगा कि नहीं?

चिंता का अर्थ क्या है? चिंता का अर्थ ही यह है कि बोझ मुझ पर है। पूरा कर पाऊंगा? नहीं; तुम साक्षी हो जाओ।

नहीं सांझ नहीं भोर, प्रवचन 9

पूरी परवाह करो
लेकिन चिंतित होने की क्या जरूरत है?

दो बातें हमें आसान दिखाई पड़ती हैं; या तो हम परवाह करते हैं तो चिंता पैदा होती है, या परवाह छोड़ दें तो चिंता छूट जाती है। इसीलिए तो हमने संसार और संन्यास को अलग-अलग कर लिया है। क्योंकि अगर घर में रहेंगे, परवाह करेंगे, तो परवाह करते हुए बेपरवाह कैसे होंगे? पत्नी की फिक्र होगी, बीमार होगी तो चिंता पकड़ेगी, रात सो न सकेंगे। बच्चा रुग्ण होगा तो फिक्र पकड़ेगी, चिंता पकड़ेगी, इलाज करना पड़ेगा। और नहीं ठीक हो सकेगा तो पीड़ा होगी। तो हम भाग जाते हैं। न दिखाई पड़ेंगे पत्नी-बच्चे, भूल जाएंगे। जो आंख से ओझल हुआ, वह चित्त से भी भूल जाता है। तो भाग जाते हैं पहाड़। पीठ कर लेते हैं। धीरे-धीरे विस्मृति हो जाएगी।

दो बातें हमें दिखाई पड़ती हैं। अगर हम संसार में रहेंगे तो परवाह करेंगे। परवाह करेंगे तो चिंता होगी। चिंता में आनंद का कोई उपाय नहीं। तो फिर हम ऐसा करें कि बेपरवाह हो जाएं। छोड़ कर भाग जाएं। वहां चिंता न होगी, तो आनंद की संभावना बढ़ेगी।

लेकिन यह परमात्मा का मार्ग नहीं। इसलिए नानक गृहस्थ बने रहे और संन्यस्त भी। फिक्र भी करते रहे और बेफिक्र भी। और यही कला है, और यही साधना है कि तुम चिंता भी पूरी लेते हो और निश्चिंत बने रहते हो। बाहर-बाहर सब करते हो, भीतर-भीतर कुछ नहीं छूता। बेटे की फिक्र लेते हो, पढ़ाते हो; बिगड़ जाए तो, न पढ़ पाए तो, हार जाए तो...तो इससे चिंता पैदा नहीं होती।

और जब तक तुम दोनों को न जोड़ दो—संसार में रहते हुए संन्यस्त न हो जाओ—तब तक तुम परमात्मा तक न पहुंच सकोगे। क्योंकि परमात्मा का भी ढंग यही है। वह संसार में छिपा हुआ और संन्यस्त है। जो उसका ढंग है, छोटी मात्रा में वही ढंग तुम्हारा चाहिए। तभी तुम उस तक पहुंच पाओगे।

बच्चा बीमार है तो दवा दो, पूरी चिंता लो, लेकिन चिंतित होने की क्या जरूरत है? पूरी फिक्र करो, परवाह पूरी करो, लेकिन इससे भीतर की बेपरवाही को मिटाने का क्या कारण है? बाहर-बाहर संसार में, भीतर-भीतर परमात्मा में। परिधि छूती रहे संसार को, केंद्र बना रहे अछूता। यही सार है।

एक ओंकार सतनाम, प्रवचन 2

चाह गयी, चिंता मिटी
मनुवा बेपरवाह...

चाह नहीं जहां सुख की, वहां भय भी नहीं है दुख का।
सुख की चाह ही दुख के भय की जननी है।

ईसा गुजर रहे थे एक गांव से।
देखा उन्होंने राह के किनारे दीवार के सहारे बैठे कुछ अत्यंत दुखी लोगों को।
ऐसे थे वे संतापग्रस्त की जैसे मौत ही उनके सामने हो।
भय से कंपित, भय से पीले हुए—मरणासन्न।
ईसा ने पूछा उनसे: 'यह हालत कैसे हुई तुम्हारी?'
उन्होंने कहा: 'नरक के भय के कारण।'
और थोड़ा आगे जाने पर ईसा ने फिर कुछ लोगों को वैसी ही स्थिति में देखा।
आंखें उनकी पथरा गई थीं और भिन्न-भिन्न आसनों और मुद्राओं में वे ऐसे बैठे थे
कि जैसे मर ही गए हों।
ईसा ने उनसे भी पूछा: 'तुम्हारा क्या है दुख?'
बोले वे: 'स्वर्ग की आकांक्षा!'
और आगे बढ़ने पर ईसा ने कुछ लोगों को वृक्षों की छाया में नाचते भी देखा।
आनंद मग्न—भाव विभोर
कौन सा खजाना मिल गया था उन्हें?
या किस नरक से बच गए थे वे?
या कौन सा स्वर्ग का द्वार खुल गया था उनके लिए?
उनके चेहरों पर चिह्न थे लंबी यात्रा के—लेकिन थकान नहीं थी, वरन उपलब्धि का विश्राम था।
और उनकी आंखों में तपश्चर्या का सौंदर्य था—लेकिन अहंकार की कोई भी रेखा न थी।
उनकी आत्माओं में आनंद की वर्षा हो रही थी और उनके चारों ओर किसी अलौकिक ही
प्रकाश के आभामंडल थे।
ईसा ने उनसे भी पूछा: 'मित्रो! तुम्हारे इस अपूर्व आनंद का राज क्या है—रहस्य क्या है?'
बोले वे: 'आकांक्षा नहीं सुख की—भय नहीं दुख का। चाह नहीं स्वर्ग की—
चिंता नहीं नरक की। और जब से चाह और चिंता छूटी है तभी से जो है उसे ही जान कर
और पाकर हम आनंदित और अनुगृहीत हैं।'
ईसा ने कहा: 'यही हैं वे लोग जो कि सत्य को उपलब्ध होते हैं—
यही हैं वे लोग जो कि सदा ही प्रभु की उपस्थिति में जीते हैं।'

पद घुघरू बांध, पत्र 27

साठ के दशक में जब ओशो जबलपुर से मुंबई की यात्राएं किया करते थे, तब वहां उनके जो सार्वजनिक प्रवचन होते या कुछ मित्रों के साथ अंतरंग गोष्ठियां होतीं वे सब रिकार्ड की जातीं व बाद में पुस्तकों के रूप में उपलब्ध हुईं। लेकिन जो निजी वार्ताएं होतीं, वे रिकर्ड नहीं की जाती थीं। उस समय यदि कोई ऐसे मित्र वहां उपस्थित होते जो वार्ता का हिस्सा तो न होते पर सुन रहे होते, तो वे चुपचाप वार्ता के कुछ अंश लिखकर ज्यों का त्यों नोट कर लेते—पूरी वार्ता को नोट कर पाना संभव नहीं था क्योंकि ओशो धाराप्रवाह बोलते रहते। नोट किया हुआ सबकुछ जीवन जागृति केंद्र के पास जमा होता रहा। ओशो के कहने पर इन वचनांशों की एक पुस्तक तैयार की गयी—नये संकेत। यह पुस्तक अब प्रकाशन में नहीं है। वैस ओशो के पाठकों के लिये यह पुस्तक हम यहां धारावाहिक रूप से प्रकाशित कर रहे हैं।

नदी से पानी भरना हो तो थोड़ा नीचे झुकना पड़ता है

मैं नदी तट पर खड़ा था। छोटी सी नदी थी। संध्या हो रही थी। गांव की युवतियां गागरों में पानी भर अपने घरों को लौट रही थीं। मैंने देखाः नदी से पानी भरना हो तो थोड़ा नीचे झुकना पड़ता है। जीवन से पानी भरने के लिए भी झुकने का कला आनी चाहिए। लेकिन झुकना तो जैसे मनुष्य भूलता ही जाता है। उसका अहंकार उसे झुकने ही नही देता। इससे ही प्रेम और प्रार्थना सभी विलीन होते जा रहे हैं। वस्तुतः जो भी महत्वपूर्ण है, वह सभी विलीन होता जाता है। और जीवन संगीत और सौंदर्य की जगह निपट संघर्ष ही बन गया है। जहां झुकने का रहस्य ज्ञात न हो, वहां संघर्ष ही शेष रह जाता है। और जहां झुकने की हार्दिक संवेदनशीलता अपरिचित हो, वहां कठोर और अनंत अहंकार असहनीय पीड़ा का स्रोत हो जाता हो तो कोई आश्चर्य नहीं। झुकना व्यक्ति को समस्त से जोड़ता है। न झुकने का आग्रह उसे सर्वसत्ता से तोड़ देता है। निश्चय ही यह झुकना सहज और स्वयंस्फूर्त होना चाहिए। अन्यथा वह भी अहंकार की ही एक अभिव्यक्ति बन जाता है। विचार मात्र से जो झुकना आता है, वह न यथार्थ होता है और न समग्र क्योंकि उसके पीछे किसी न किसी तल पर प्रतिरोध बना ही रहता है और मात्र बौद्धिक सतह से जन्मने के कारण वह अयथार्थ भी होता है, क्योंकि प्राणों की समग्रता उसकी गवाही में नहीं होती है। फिर ऐसा झुकना पश्चात्ताप भी लाता है, क्योंकि उससे अहंकार को चोट लगती है। वह अहंकार के विरोध में किया गया कृत्य है, इसीलिए अहंकार पश्चात्ताप के रूप में उसका बदला भी लेता है। मनुष्य हृदय जब अहंकार-शून्य होता है, तभी वह सहजता से और समग्रता से झुकता है। यह झुकना वैसे ही सहज और समग्र होता है जैसे कि आंधियों में घास के छोटे पौधे झुक जाते हैं। वे जैसे आंधियों के साथ एक ही हो जाते हैं। उनका आंधियों से कोई विरोध ही नहीं है और उन्हें स्वयं की अहंता का भी कोई बोध ही नहीं है और उन्हें स्वयं की अहंता का भी कोई बोध नहीं है। मनुष्य जिस दिन इस भांति के झुकने को जान लेता है, उसी दिन परमात्मा के सारे रहस्य उसके समक्ष स्पष्ट हो जाते हैं। एक फकीर से किसी युवक ने पूछा थाः 'पुराने दिनों में ऐसे लोग थे जिन्होंने परमात्मा को स्वयं अपनी आंखों से देखा था। अब ऐसे लोग क्यों नहीं है।' उस वृद्ध ने उत्तर में कहा थाः 'क्योंकि, आजकल इतना नीचा झुकने को कोई राजी ही नहीं।' निश्चय ही परमात्मा की नदी से पानी भरने के लिए झुकना आवश्यक है। जो नदी तट पर अकड़े खड़े हैं, वे कैसे उस पानी को भर सकते हैं? ✡

सत्य की परिभाषा पूछते हो? सत्य की कोई परिभाषा नहीं है क्योंकि स्वयं की ही स्वयं के द्वारा क्या परिभाषा हो सकती है? पायलट ने क्राइस्ट से पूछा थाः 'सत्य क्या है?' क्राइस्ट ने पायलट की ओर मात्र देखा भर और चुप रहे। सत्य कोई सिद्धांत नहीं है। सत्य कोई शब्द नहीं। सत्य तो अनुभूति है—स्वयं की आत्यंतिक गहराई की अनुभूति। 'जो है' उसके साथ एक हो जाना सत्य है। ✡

जीवन की बड़ी बड़ी यात्रा के लिए एक कदम उठाने का साहस ही काफी है क्योंकि एक कदम से अधिक तो एक ही साथ कोई भी नहीं चल सकता है। मित्र, हजारों मील की यात्रा भी एक ही कदम से आरंभ होती है और एक ही कदम से पूरी होती है। ✡

एक ऐसी अग्नि भी है, जो दीखती नहीं, लेकिन निरंतर स्वयं को जलाती रहती है। वह अग्नि है तृष्णा की। तृष्णा ऐसे ही जलाती है जैसे कोई जलती हुई मशाल को आंधियों के विरोध में लिए खड़ा हो और स्वयं ही उससे झुलस जाए। और फिर दोष दे आंधियों को! ✡

मैं उस शिक्षा के विरोध में हूं जो व्यक्तियों को किन्हीं निर्धारित आदर्श के ढांचों में ढालती हो। वैसी शिक्षा से व्यक्तित्व विकसित नहीं, कुंठित ही होते हैं। भय पर आधारित शिक्षा के भी मैं पक्ष में नहीं हूं फिर वह भय चाहे दंड का हो या प्रलोभन का। भय से अधिक विषाक्त और क्या हो सकता है? और आरोपित अनुशासन की भी मैं निंदा करता हूं क्योंकि वह दासता के लिए तैयारी से ज्यादा और क्या है? ✡

क्रमशः

इंद्रियों का सम्यक उपयोग

अपनी इंद्रियों का पूरी तरह से उपयोग करना हमारे स्वास्थ्य के लिए सहयोगी होता है। ओशो च्वांगत्सु में आयोजित होने वाले कार्यक्रम 'दैनिक जीवन में ध्यान' के अंतर्गत ध्यान करने की सरल व्यावहारिक विधियां बताई जाती हैं।

वातायना और आनंदी इसका विवरण दे रही हैं कि हम कहीं भी हों और जो कुछ भी कर रहे हों उसमें पूरी तरह से मौजूद होने का यह अनुपम कार्यक्रम हमारे लिए कितना सहायक सिद्ध होता है।

इन ध्यान विधियों में क्या सिखाया जाता है?

वातायना : हमारे ध्यान को गहरा बनाने के लिए ये छोटी-छोटी मार्गदर्शक विधियां हैं। ओशो की 'दि बुक ऑफ सीक्रेट्स' में से लगभग 25 ध्यान विधियां चुन कर एक टीम ने पैंतालीस मिनट का एक कार्यक्रम तैयार किया है। ये विधियां बहुत लचीली हैं। हम लोग

समय-समय पर उनका पुनरावलोकन करते रहते हैं, और जरूरत के अनुसार उनमें बदलाव लाते हैं।

आनंदी : ध्यान में इंद्रियों का प्रयोग हमें अपने पास वापस लाने के लिए किया जाता है। हमसे ध्वनियां सुनने के लिए भी कहा जा सकता है, जो प्रायः सजीव संगीत की होती हैं। जब हम सुनने में पूरी तरह डूब जाते हैं तो हम अपने केंद्र में पहुंचते हैं। जिंदगी की शोरगुल भरी ध्वनियों के साथ प्रयोग करने से पहले कर्णमधुर ध्वनियों से शुरू करना ज्यादा सरल होता है। कुछ ध्यान विधियां ऐसी भी हैं जिनमें हमारी अपनी आवाज का भी उपयोग किया जाता है।

अन्य तकनीकें हमें स्पर्श करने और सूंघने को आमंत्रित करती हैं। कभी-कभी हम सूंघने, स्पर्श करने और देखने की इंद्रियों को उपयोग में लाने के लिए गुलाब के फूलों का प्रयोग करते हैं।

वातायना : हमारे वस्त्रों को, बालों को या त्वचा को पूरी तरह से स्पर्श करने से हमारे केंद्र के और अमन की स्थिति के द्वार खुल जाते हैं। हम इसका प्रयोग अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, जब मैं फोन पर बात कर रही होती हूं तो मैं अपने केंद्र से सावधान होने की बात याद रख सकती हूं।

यहां पर आप एक छोटी सी तकनीक (विधि) सीख कर कुछ दिन तक उसका अभ्यास करते हैं, तब उसके बाद घर जाकर आप उसका अभ्यास कर सकते हैं। यह ठीक उसी तरह है जैसे आपने एक बार तैरना सीख लिया हो, तो उसके बाद हर समय आप पानी में जाते हैं तो स्वाभाविक रूप से तैर लेते हैं। या यदि आपको एक बार साइकिल चलाना आ जाता है, तो आप एकदम साइकिल पर बैठक चल पड़ते हैं।

जैसे-जैसे हम इस तकनीक का अभ्यास करते हैं, कुछ व्यवस्थित होने लगता है, कुछ संगठन, कुछ समझ आने लगती है। फिर हम अपने दैनिक जीवन में उसी ओशो चुवांगत्सु के अनुभव को ला सकते हैं।

लोग इन ध्यान संबंधी अभ्यासों को घर में किस प्रकार जारी रख सकते हैं?

आनंदी : जब हम घर पर होते हैं तो हम इसे बहुत सरलता से प्रारंभ कर सकते हैं, जैसे पक्षी के गाने या किसी संगीत को बहुत ध्यान से सुनना। वहां से फिर हम कोलाहल को इसमें शामिल कर सकते हैं, जिसे सामान्य स्थिति में स्वीकार करने में हमें कठिनाई होती है। धीरे-धीरे कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी हम अधिक जागरूक और हलके हो जाते हैं।

सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। हम सिर्फ हलके हो जाते हैं और अपनी इंद्रियों का उपयोग करते हैं। यह मजेदार है और कारगर भी। किसी फूल को देखो! धूप की गरमाहट का अनुभव करो! इसमें किसी विशेष कमरे या अतिरिक्त समय की आवश्यकता नहीं होती। कुछ ही मिनटों में यहां पर या वहां पर हम अपने चारों ओर के वातावरण से जुड़ जाते हैं और अपने केंद्र को पा लेते हैं। आप इसे किसी भी समय, किसी भी स्थिति में कर सकते हैं। बड़े परिणाम की प्रतीक्षा करने की बजाय हर समय जागरूक और सतर्क हो जाने के लिए बस यूं ही, अकस्मात, हर क्षण का उपयोग एक छोटे से स्मरण के रूप में किया जा सकता है।

इसमें हमें इतना ही करना है कि किसी एक इंद्रिय के प्रति जागरूक हो जाएं।

लोग ध्यान विधियों के विषय में क्या कहते हैं?

वातायना : अक्सर लोग कहते हैं कि वे जो कुछ भी करते हैं उसमें वे मौजूद रहें तो उनमें अधिक सामर्थ्य आ जाती है। कभी-कभी कोई यह भी कहेगा कि इसके बाद और रात में भी वे इस प्रक्रिया के होने का अनुभव कर सकते हैं।

एक तकनीक (विधि) है जिसे लोग बहुत पसंद करते हैं जैसे 'अतीत को स्वप्न के रूप में देखना।' इसे सोने से एकदम पहले किया जाता है और इसके अंतर्गत जो कुछ दिन भर घटित होता है, हर चीज के माध्यम से गुजरना होता है। बहुत से लोग कहते हैं कि इससे उन्हें अधूरे काम को करने का उपाय खोजने में सहायता मिलती है।

आनंदी : एक दूसरी तकनीक (विधि) है जिसे सोने से पहले किया जाता है—केवल अपने नाम को मंत्र की तरह दोहराते रहिए। दोहराते-दोहराते जब आप नींद में चले जाते हैं तब भी ध्यान लगातार चलता रहता है। सुबह जब जागते हैं तो सबसे पहले आपको अपने नाम का स्मरण आता है। लोगों को आश्चर्य होता है कि यह विधि कितनी सरल है। और इससे नींद भी बहुत अच्छी आती है।

वातायना : मुख्य बात यह है कि इससे लोगों को वर्तमान क्षण में मौजूद होने में सहायता मिलती है, चाहे वे अपने व्यक्तिगत जीवन में, अपने कार्यों में अथवा संबंध में कुछ भी कर रहे हों, वे पूर्ण रूप से लोगों के साथ उस क्षण में मौजूद रह सकते हैं। उन्हें अधिक संतुलित होने की अनुभूति होती है, और हर स्थिति में वे जागरूकता, ताजगी और समग्रता का पुनः अनुभव कर सकते हैं।

फरीदबानी

फरीदुद्दीन गंजशकर

मंगोल आक्रांता चंगेज़खान बारहवीं सदी में जब अफगानिस्तान से होता हुआ अपने खूनी लश्करों के साथ तबाही मचाता मध्य पूर्व एशिया व यूरोप की ओर बढ़ रहा था, एक सीधा-सादा पठान परिवार उस तबाही से बचने के लिए अपना घर छोड़, पूरे असबाब के साथ, अफगानिस्तान से पश्चिम दिशा की ओर निकल पड़ा। हफ्तों पैदल चलता हुआ वह परिवार कोठेवाल पहुंचा जो पंजाब सूबे के मुलतान शहर के पास बसा हुआ एक गांव था। गांव हरा-भरा था, जिसकी मिट्टी पर सतलुज नदी बड़ा रहम रखती थी। अपनी सादगी में खुशहाल गांववालों ने उस अनजबी पठान परिवार को अपने दिल में ही नहीं, घर-संसार बसाने के लिए गांव की जमीन पर भी जगह दी।

जल्दी ही वह परिवार गांव में रच-बस गया। पठान थे, सो खूब मेहनत करते, और मिट्टी ने भी खूब साथ दिया—घर में खुशहाली की बरकत होने लगी। साल बीतते गये, सदी खतम होने को आयी, और घर में एक बच्चे ने जनम लिया। बच्चे का नाम रखा गया फरीदुद्दीन, जिसे प्यार से सब फरीद पुकारते। साधारण परिवार, साधारण बच्चा, आम बच्चों की तरह बड़ा ही शैतान। जब तक गोद में था तब तक तो उसकी मां, मरियम बीबी, उसे गोद में लिए ही अपने सब काम करती। लेकिन जब चलने-फिरने लगा तो जब देखो घर से बाहर निकल जाए। अब मरियम बीबी वह सब काम

देखे जिनमें गांव की औरतों को दिन-रात खटना पड़ता है, या खेत-खलिहानों में फरीद को ढूंढती बैठे—एक सिरदर्दी खड़ी हो गयी। अब करे तो करे क्या!

फरीद को खजूर भी बड़े पसंद थे, जब देखो मां से खजूर मांगता रहता। मरियम बीबी को एक तरकीब सूझी। एक दिन उसने जमीन पर मुसल्ला बिछा दिया और फरीद को बोली कि इसपर बैठकर अल्लाह की नमाज़ कर, अल्लाह तुझे खजूर देगा। फरीद बड़ा खुश हुआ कि अल्लाह के खजूर तो और भी मीठे होंगे। फरीद ने मां से पूछा कि लेकिन मैं नमाज़ में कहूंगा क्या? मरियम बीबी भी बेचारी सीधी-सादी, जानती कुछ भी नहीं। वह बोली, तू यही करते रहना—अल्लाह मुझे खजूर दे, अल्लाह मुझे खजूर दे। फरीद जब आंखें बंद करके अपनी यह तुतलाती नमाज़ पढ़ने लगा तो मरियम बीबी ने चुपचाप मुसल्ले के नीचे मुट्ठीभर खजूर रख दिए। फरीद ने जब आंखें खोलीं और मुसल्ले के नीचे पड़े खजूर देखे तो बहुत खुश हुआ।

मरियम बीबी ने उससे कहा कि अब जब भी तुझे खजूर चाहिए हों, नमाज़ पढ़कर अल्लाह से मांग लिया कर। उसे फरीद को मसरूफ रखने की अच्छी तरकीब मिल गयी थी। फरीद खजूर पाने के लिए दिन में कई-कई बार नमाज़ पढ़ता रहता, और मरियम बीबी इत्मिनान से अपने काम करती रहती। बस बीच में एक मुट्ठी खजूर मुसल्ले के नीचे रख देती। लेकिन एक दिन वह खजूर रखना भूल गई। कहानी कहती है कि थोड़ी देर बार उसने देखा कि फरीद खजूर खाता आ रहा है। हैरान होकर उसने फरीद से पूछा कि वह खजूर कहां से लाया। फरीद बोला, माई तू हैरान क्यों है, रोज की तरह आज भी अल्लाह ने ही मेरे मुसल्ले के नीचे खजूर रखे थे। मरियम बीबी बहुत सीधी थी, उसे लगा कि अल्लाह जब पूरी कायनात का सारा काम देखता है तो उसने एक गरीब जनानी का छोटा-सा काम कर दिया तो कौनसी बड़ी बात हो गई। वह गांव में दौड़ी नहीं गई कि मेरे लड़के के साथ कोई चमत्कार हो गया है, उसके लिए तो यह ऐसी ही आम बात थी कि चूल्हे पर चावल चढ़ा दो तो वह अपने आप पक जाते हैं।

लेकिन उस दिन से मरियम बीबी ने फरीद में एक फर्क देखा। वह नमाज़ के बीच-बीच आंखें खोलकर इधर-उधर देखता। उसने जब फरीद से पूछा कि वह आंखें क्यों खोलता है, तो फरीद ने कहा कि अब मैं अल्लाह को देखना चाहता हूं—वह जब मुझे इतना प्यार करता है, तो वह कितना प्यार होगा। माई बोल, क्या वह तेरे जैसा प्यारा है?

मरियम बीबी बोली, बेटा मैंने उसे कभी नहीं देखा। वह सब जगह है, पर छिपा रहता है।

यह बात फरीद के मन में घर कर गई। वह खजूर भूल गया और खजूर देने वाले को देखना उसकी जिद बन गई। बच्चों के साथ उसने बहुत छिपन-छिपाई खेली थी और जानता था कि जो छिपा हो, उसे ढूंढा जा सकता है। अब वह दिन भर छिपने की जगहों पर अल्लाह को खोजता रहता—कभी सरसों के खेतों में, कभी सतलुज किनारों की झाड़ियों में, कभी टीलों की मांद में। उसे पता नहीं था कि अल्लाह है कितना बड़ा, तो उसे लगा कि कहीं किसी छोटी जगह पर छिप गया हो—सो कभी नमकदानी खोलकर देखता, उलटे पड़े पीतल के गिलास उठाकर देखता, दही की हंडी में देखता...।

मां-बाप हैरान थे कि दिन भर यह क्या ढूंढता रहता है। जब उससे पूछने पर पता चला कि वह अल्लाह को ढूंढ रहा है, तो वे थोड़े परेशान हुए। उन्हें लगा कि अल्लाह की कोई खास समझ उन्हें तो है नहीं, सो इसे मदरसे भेजना चाहिए ताकि इसे अल्लाह के तौर-तरीकों की सारी समझ आए।

फरीद मदरसे जाने लगा, पहला अलिफ उसने लिखना सीखा। अलिफ से बे और बे से पे सीखना भी चलता रहा और अल्लाह की उसकी तलाश भी चलती रही। अब वह बड़ा हो रहा था और तैरना सीख गया था। अब वह सतलुज में डुबकियां लगा-लगाकर भी अल्लाह को खोजता। साल बीतते गए, वह अरबी सीख गया, फारसी सीख गया, पश्तो सीख गया, किताबें पढ़ लीं, कल्मे समझ आने लगे—बहुत जान गया, पर अल्लाह अब तक नहीं दिखा।

फरीद सोलह साल का हो गया। उस अल्हड़ उम्र में वह वह सब पढ़ चुका था जो मदरसे सिखा सकते थे। अब आगे क्या? अब अल्लाह को कहां खोजे?

उसी साल कुतबुद्दीन बख्तियार काकी कोठेवाल पहुंचे। कुतबुद्दीन एक बड़े प्रभावशाली सूफी थे और चिश्तियों की जिंदी परंपरा के उत्तराधिकारी थे। बगदाद से हिंद के आखरी छोर तक उनके नाम का डंका बजता था। उनसे भी बड़ा डंका अजमेर वाले मुइनुद्दीन चिश्ती का था, जो कुतबुद्दीन चिश्ती के गुरु भी थे। ख्वाजा मुइनद्दीन चिश्ती अभी जिंदा थे, लेकिन अपने जीते-जी कुतबुद्दीन चिश्ती को अपना उत्तराधिकारी बनाकर दूर भेज दिया था, यह कहते हुए कि बरगद के दो पेड़ एक जगह पर होने से क्या फायदा!

कुतबुद्दीन दिल्ली जा बसे थे। वहां उन्होंने एक खानगाह बनाई, जहां मस्ताने इकट्ठे होकर नाचते और गाते। सूफिज़्म में संगीत के साथ नाचने-गाने की शुरुआत ख्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती ने की थी। मध्य-पूर्व एशिया में पनपा सूफिज़्म योग के कड़े अनुशासन जैसा था, मुइनुद्दीन चिश्ती इसे भक्ति के रस में डुबो दिया। कुतबुद्दीन चिश्ती ने भी इस रस की धारा को आगे बढ़ाया। उनकी खानगाह रस से भरी एक झील थी, जिसमें संगीत और नृत्य की लहरें झूमती रहतीं। दिल्ली का सुलतान इल्तुमिश भी उनका मुरीद हो गया था और उनकी खानगाह को उसने एक खूबसूरत किले जैसा बनवा दिया। बाद में दिल्ली का अगला सुलतान कुतबुद्दीन ऐबक भी उनका मुरीद बना और कुतबुद्दीन चिश्ती के नाम पर ही उसने खानगाह के पास कुतुब मीनार बनवाई।

कुतबुद्दीन चिश्ती जब कोठेवाल पहुंचे, उस समय वह बगदाद की यात्रा से दिल्ली वापस लौट रहे थे। उनके रुकने की व्यवस्था तो सुलतान ने अजोधन में कराई थी जो एक बड़ा शहर था, लेकिन कुतबुद्दीन चिश्ती अजोधन पहुंचने से पहले जब कोठेवाल से गुजरे तो उन्होंने हवा में कुछ सूंघा और बोले कि दो दिन वह यहीं रुककर आराम करेंगे। कुतबुद्दीन वहां ठहरे तो दो दिन वहां मानो उर्स लग गया। दूर-दराज से लोग आए, दिन-रात लंगर चला। कोठेवाल से उठता संगीत अजोधन तक भी सुना जा सकता था।

यह दो दिन फरीद के लिए बड़े विचित्र थे। पूरा गांव दिन-रात लंगर पका रहा था, और वहीं सब लंगर के व्यंजनों को जीभर चखते। लेकिन फरीद की तो जैसे भूख ही मिट गई। उसका पूरा पिंडा ऐसे थरथर कांप रहा था जैसे कोई उसे झकझोर रहा हो। एक अजीब-सी खुशबू उसे आ रही थी जैसे आस-पास कोई अनदेखा हो, जो उसे बुला रहा हो। सतलुज में डुबकी लगाता तो उसे लगता जैसे कोई आंख उसे देख रही हो।

दो दिन वह कुतबुद्दीन के डेरे पर नहीं गया, क्योंकि वह उस खुशबू और उस आंख के पीछे दौड़ रहा था। आखरी दिन मुंह-अंधेरे उसकी नींद खुली और वह बिना कुछ सोचे-समझे डेरे की ओर चल पड़ा। कुतबुद्दीन तखत पर बैठ चुके थे। सूफियाना महफिल सज चुकी थी। फरीद सीधे जाकर कुतबुद्दीन के सामने खड़ा हो गया और उनकी आंखों में देखने लगा। वहां उसे वही आंख दिखाई दी जो सतलुज में दिखी थी, और उसी अजीब-सी खुशबू ने कुतबुद्दीन को घेरा हुआ था।

फरीद धड़ाम से उनके सामने बैठ गया और उनका दामन थाम लिया। कुतबुद्दीन ने उसके सिर पर हाथ रखा और फिर उसकी ठुड्डी को ऊपर उठा, उसकी आंखों में देखते हुए बोले—चल। फरीद ने कहा—चलिये।

न मां-बाप ने अपने सोलह साल के लड़के को रोका, न छोटे भाई-बहनों ने कोई गुहार लगाई। उसकी झोली सगनों से भरकर उसे विदा किया गया। और फरीद कुतबुद्दीन के सथ दिल्ली आ गया।

दिल्ली में कुतबुद्दीन ने फरीद को अपने दामन में समेट लिया, उसे सदा आस-पास रखते। कुतबुद्दीन की आबोहवा में फरीद मस्त रहने लगा।

कुछ साल कैसे बीत गए, पता ही नहीं चला। सोलह साल का वह लड़का पच्चीस साल का बलिष्ठ युवक बन चुका था। एक दिन फरीद ऐसे ही कुतबुद्दीन से बोले कि इतनी मस्ती है, इतना सुरूर है, फिर भी अल्लाह तो अब तक नहीं दिखा। महसूस होता है, पर दिखता नहीं!!

कुतबुद्दीन बोले, किसीसे मुहब्बत करो तो उसे यकीन दिलाना पड़ता है कि उसके लिए तुम कुछ भी कर करने को तैयार हो, तूने अभी किया ही क्या है, बेटा?

कुतबुद्दीन के ये शब्द फरीद के सीने को छलनी कर गए। क्या करूं, कि अल्लाह को यकीन आ जाए—इस जूनून ने घेर लिया। कभी रात-रात भर वह एक टांग पर खड़ा रहता, कभी घंटों कड़ी धूप में सूरज को बिना पलक झपकाए देखता रहता, कभी भूखा रहता तो कभी कोई और तपस्या करता। अल्लाह नहीं दिखा। फरीद ने ठान ली थी कि वो जिद्दी तो मैं भी जिद्दी। एक दिन महरौली के एक कुंए में अपने पांव से रस्सी बांध उलटा लटक गया। हफ्ते भर भूखा-प्यासा यूं ही लटका रहा, कि जब तक तू नहीं दिखेगा तब तक निकलूंगा नहीं। शरीर जर्जर हो चुका था, लेनिक मन एक ही रट लगाए था कि दिख जा, दिख जा, दिख जा...।

सातवें दिन कोई उधर से गुजरता था। उसने देखा कि कोई लटका है, सो उसने फरीद को कुंए से बाहर निकाला। फरीद का शरीर इतना जर्जर हो चुका था कि न तो वह कुछ बोल सका न कोई विरोध कर सका। राहगीर उसे वहीं कुएं के किनारे छोड़ आगे निकल गया। फरीद के शरीर में कोई हलन-चलन नहीं थी, मानो एक मुरदा पड़ा हो। पेड़ों पर बैठे कौवों ने देखा कि एक लाश पड़ी है, सो उसे खाने आ बैठे। इधर-उधर चोंच मारी, कहीं कोई मांस नहीं। खाने लायक उस शरीर में कुछ दिखा तो बस दो आंखें। एक कौवे ने बाईं आंख में चोंच मारी। फरीद के मुंह से निकला—

कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खाइयो मांस
ये दो नयना न खाइयो इन पिय देखन की आस

फरीद की ये पंक्तियां इस विश्व के इतिहास में कहे गए संत-काव्य की पहली पंक्तियां थीं, जिसके फरीद पुरोधा बनने को थे।

फरीद को बोलता देखा कौवे वहां से उड़ गए। अभी तक जो उत्तेजना से भरे, इतनी कांव-कांव मचा रहे थे, पेड़ों पर जाकर शांत बैठ गए—बात खतम हो गई। फरीद के लिए भी बात खतम हो गई। आंखें बंद कर लीं, और छोड़ दी अंदर की सारी कांव-कांव। जब आंखें खोलीं तो वे फरीद ने नहीं, शेख फरीद ने खोलीं। शेख फरीद की आंखों ने जो देखा, उसमें अल्लाह के सिवाय और कुछ था ही नहीं।

न कोई उड़ने वाले घोड़े पर बैठकर आया, न कोई धधकती आग में से प्रकट हुआ, न आसमानों में बिजलियां कड़कीं, न स्वर्गों से कोई भारी-भरकम आवाज आई—कोई चमत्कार नहीं हुआ। वही दुनिया थी, सबकुछ जस का तस था—लेकिन देखने वाली आंखें बदल गई थीं। इन आंखों के लिए सबकुछ एक चमत्कार था—वह चमत्कार जिसे फरीद खोज रहा था, और शेख फरीद अब जी रहे थे।

दो दिन उन्होंने खुद को समेटा। खाया-पिया तो देह में जान आई।

तीसरे दिन जखमी आंख पर पट्टी बांधे वह कुतबुद्दीन की हाजरी में पहुंचे। कुतबुद्दीन ने आंख की पट्टी की ओर इशारा करके पूछा कि यह क्या हुआ। फरीद पंजाबी में बोले—अख्ख आ गई ए (आंख आ गई है) मतलब कि आंख में सूजन हो गई है। कुतबुद्दीन हंसते हुए बोले, हां, अख्ख आ गई ए। हां आंख आ गई है, यह कहने से उनका मतलब था कि तुझे आंख मिल गई है।

उसी दिन कुतबुद्दीन ने फरीद को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। चिश्तियों में पहला चिश्ती हज़रत मुहम्मद को, और दूसरा हज़रत अली को माना जाता है। उसी परंपरा में कुतबुद्दीन अट्ठारवें चिश्ती थे, सो फरीद उन्नीसवें हुए।

अब फिर वही हुआ जो मुइनुद्दीन और कुतबुद्दीन के बीच हुआ था—बरगद के दो पेड़ों की बात। कुतबुद्दीन ने फरीद से कहा कि अब वह कहीं दूर चले जाएं। फरीद जाने को तैयार नहीं थे, लेकिन कुतबुद्दीन ने कहा—लोग भूखे बैठे हैं और तू यहां खजूरों के ढेर पर बैठा है, जा और खजूर बांट।

तब जाकर फरीद माने। सुल्तान इल्तुमिश ने हरियाणा के हांसी में उनके रहने का इंतजाम करा दिया, और अपनी बेटी का निकाह भी उनसे करा दिया।

हांसी में जब फरीद का डेरा जमा, तो हिंदुस्तान की सरज़मीन के लिए यह एक अनोखा मंजर था—तीन जिंदा चिश्ती एकसाथ मौजूद! मुइनुद्दीन अजमेर में, कुतबुद्दीन दिल्ली में और फरीद हांसी में। फिर कुछ समय बाद मुइनुद्दीन चले गए।

फरीद के डेरे का मंजर कुछ अलग ही था। फरीद गीत लिखते भी, और गाते भी। उनसे पहले किसी संत द्वारा कभी काव्य-सृजन नहीं हुआ था। शायद पृथ्वी उस समय कोई नयी करवट ले रही थी। क्योंकि ठीक उसी समय इश्क हकीकी दुनिया के एक दूसरे हिस्से में भी गीतों में ढाली जा रही थी—इरान में जलालुद्दीन रूमी द्वारा। और मजे की बात यह है कि रूमी का परिवार भी चंगेज़खान की लाई तबाही से बचने के लिए अफगानिस्तान से ही इरान जा बसा था।

फरीद ने जो लिखा, ठेठ पंजाबी में लिखा। उस समय तक साहित्य का मतलब होता था कि वह अरबी में लिखा हो, फारसी में या संस्कृत में। लोकभाषाओं की अभी साहित्य में कोई पैठ शुरू नहीं हुई थी। और फिर पंजाबी तो बड़ी दीन-हीन मानी जाती थी, जो बस रोजमर्रा के बरतन-बर्ताव, झगड़ों और मनुहारों के ही काम की थी। लेकिन फरीद ने एक नए रास्ते की मिट्टी तोड़ी।

उनके साथ एक नयी शुरुआत और हुई। उनसे पहले सूफिज़्म में अल्लाह को माशूका का दरजा दिया जाता था, और उसे तलाशने वाले को माशूक का। फरीद ने अल्लाह को छैल-छबीला बांका बना दिया और उसे तलाशने वाले को बिरह में तड़पती गोरी। यहां से सूफिज़्म स्त्रैण हो जाता है। इसके साथ ही एक नया मार्ग खुलता है—भक्ति के विस्फोट का, जो फरीद के तीन सौ साल बाद तक लगातार होता रहा। फरीद के गीतों की कड़ियां कितनी ही लोकभाषाओं व सदियों से गुजरती हुई कितनों के ही गीतों में प्रवेश करती चली गईं—कबीर के भी, नानक के भी, रैदास के थी, मीरा के भी, दादू के भी, यारी के भी, दूलन के भी, पलटू के भी, बुल्लेशाह के भी, अमीर खुसरो के भी।

हांसी में एक सैलाब आया था। न जाने कहां-कहां से परवाने चले आ रहे थे। इन्हीं में एक चेहरा था जो बार-बार आता और फिर गायब हो जाता। अभी गया नहीं, कि फिर वापस लौट आता। यह बीस साल का एक शरमीला-सा युवक था, जो दिल्ली से आता था। नाम था निज़ामुद्दीन। वह आता, तो फरीद की आंखें उसका जीभर स्वागत करतीं। कुछ दिन वह टिका ही रह जाता, तो फरीद आंखें फेर लेते। यह उनका इशारा होता दिल्ली वापस लौट जाने का।

फरीद को हांसी में रहते चार साल हो गए थे। उधर कुतबुद्दीन के जाने का समय आया। उन्होंने संदेशा भिजवाया कि फरीद मुझे देखकर अपना मन भर ले तो मैं जाऊं। फरीद दिल्ली लौट आए। उनका हाथ अपने हाथों में लिए कुतबुद्दीन ने अपनी आंखें मूंद लीं।

सुलतान ने कहा कि अब दिल्ली की खानगाह को फरीद संभालें क्योंकि वही कुतबुद्दीन के उत्तराधिकारी हैं। फरीद बोले कि मेरा उत्तराधिकार यह संभालेगा, और यह कहते हुए उन्होंने पास ही खड़े निज़ामुद्दीन की ओर इशारा किया। और दिल्ली को उसके हज़रत निज़ामुद्दीन औलिया मिल गए। आगे चलकर उन्हीं के सामने अमीर खुसरो नाचे, और उनकी शान में वे अमर गीत उन्होंने लिखे जो आज भी गली-गली गूंजते हैं—छाप तिलक सब छीनी रे मोसे नयना लड़ाई के। अमीर खुसरो के साथ ही कव्वाली की शुरुआत भी हुई।

अब जब फरीद ने कहा कि वह दिल्ली में नहीं रुकेंगे तो सबको लगा कि वह हांसी लौट जाएंगे। लेकिन फरीद ने कहा कि जो जगह एक बार छोड़ दी, वहां वापस क्या जाना—अब तो नई जगह जाकर खजूर बांटेंगे।

फरीद पंजाबी में लिखते थे और पंजाब में उनके बड़े भगत थे। सबने मनुहार की कि वह पंजाब चलें। फरीद मान गए। कोठेवाल के पास का ही जो बड़ा शहर अजोधन था, वह सुलतान इल्तुमिश ने फरीद के नाम कर दिया। वह पूरा शहर उनकी खानगाह बनने को था।

फरीद जब अजोधन के लिए निकले, तो रास्ते में पंजाब का मोखलपुर पड़ा। फरीद वहां रुके, तो चालीस दिन रुक गए। वह भी मौन में। बस एक टीले पर बैठे रहते। आस-पास लंगर चलते, उनके गीत गाए जाते, लोग नाचते। फरीद मौन ही रहे। जब चालीस दिन पूरे हुए तो फरीद चलने लगे। उनके चलने से पहले मोखलपुर के राजा

मोखल ने ऐलान करवाया कि मोखलपुर जो मेरे नाम से जाना जाता था, अब से फरीदकोट कहलाएगा, और जिस टीले पर फरीद बैठे वह अब टीला बाबा फरीद कहलाएगा।

आखिरकार फरीद अजोधन पहुंच गए। फरीद के गीतों ने पूरे मुलतान, पूरे पंजाब को सुहाग के सिंदूर से रंग दिया। प्रतीक रूप में कहा जाता है कि उनके गीतों की मिठास से सतलुज का पानी भी शरबत बन गया था। धीरे-धीरे फरीद को गंजशकर कहा जाने लगा। गंजशकर यानि शक्कर का खजाना।

फरीद ने जब दिल्ली छोड़ी थी, तो उसके साथ ही चिश्ती परंपरा का बोझ भी छोड़ आए थे। उनका कहना था कि कोई भी चोला ओढ़कर क्यों कंधों पर बोझ रखना—हलके हो जाओ तो अल्लाह से लगो। उनके गीतों में किसी भी धर्म के प्रतीकों का कोई जिक्र नहीं आता—विरोध में भी नहीं। बस अल्लाह का नाम आता है प्रियतम के रूप में। कभी छैला बनकर, कभी बांका बनकर, जिसे लुभाने के लिए गोरी खड़ी है। दूसरा जिक्र आता है मौत का—कि हर टूटते पत्ते और सरकती मिट्टी में मौत को देख लो, और मरने से पहले अल्लाह को छू लो, फिर तो बस मौत की ही मौत होगी।

अजोधन में दूर-दूर से इतने लोग आ रहे थे कि रात हो या दिन कोई न कोई मंडली वहां गाती-बजाती पहुंचती ही रहती थी। सो वहां चौबीस घंटे लंगर चलता। हर रोज उर्स होता। सीधे लोग थे, न किसी ज्ञान का बोझ था, न पता था कि कुछ पाना है। न वहां के कोई नियम थे, बस नाचो और गाओ। कितने ही लोगों के बेड़े तर गए, और उस पार पहुंच गए। अजोधन शहर को फरीद दा पाकपत्तन कहा जाने लगा—फरीद की पवित्र नाव। आज की तारीख में वह शहर अब केवल पाकपत्तन कहलाता है, जिससे पाकिस्तान ने भी अपना नाम पाया।

पाकपत्तन में अभी भी चौबीस घंटे का लंगर चलता है। दिन के किसी भी समय, कहीं न कहीं कव्वालियां चल रही होती हैं और हर रात बड़ी कव्वाली होती है। आज भी पाकपत्तन से बहती सतलुज शरबत पिलाती है।

फरीद प्रेम के मार्ग की गंगोत्री हैं। जब काशी का महाजुलाहा खुद को राम की दुलहनिया कहता है, जब चित्तौड़ की रानी कहती है कि म्हाणो सपना मा परणया रे दीनानाथ, जब बुल्ला कहता है कि मैं नच के यार मनाना—तो फरीद का छैला वहां खड़ा होता है।

यह शायद आकस्मिक नहीं है कि ओशो जितने संत-कवियों पर बोले, उन्होंने उन पर बोली पुस्तकों के शीर्षक उनकी किसी गीत की कोई कड़ी निकालकर रखे। सिर्फ जब फरीद पर बोले तो फरीद के किसी गीत की कोई कड़ी उनकी पुस्तक का शीर्षक नहीं बनी, प्रेम शीर्षक बना—अकथ कहानी प्रेम की।

ओशो का नजरिया

शेख फरीद प्रेम के पथिक हैं, और जैसा प्रेम का गीत फरीद ने गाया है वैसा किसी ने नहीं गाया। कबीर भी प्रेम की बात करते हैं, लेकिन ध्यान की भी बात करते हैं। दादू भी प्रेम की बात करते हैं, लेकिन ध्यान की बात को बिलकुल भूल नहीं जाते। नानक भी प्रेम की बात करते हैं, लेकिन वह ध्यान से मिश्रित है।

फरीद ने शुद्ध प्रेम के गीत गाए हैं; ध्यान की बात ही नहीं की है; प्रेम में ही ध्यान जाना है। इसलिए प्रेम की इतनी शुद्ध कहानी कहीं और न मिलेगी। फरीद खालिस प्रेम हैं। प्रेम को समझ लिया तो फरीद को समझ लिया। फरीद को समझ लिया तो प्रेम को समझ लिया।

शेख फरीद कहता है: प्यारो, अल्लाह से लग जाओ। अब इसका क्या अर्थ होगा—'अल्लाह से लग जाना?' वही अर्थ होगा कि चारों तरफ अस्तित्व ने घेरा हुआ है; अल्लाह तुझे घेरे ही हुए है; तू ही अलग-थलग है; अल्लाह तो लगा हुआ ही है: तू भी लग जा। अल्लाह ने तो तुझे ऐसे ही घेरा है जैसे मछली को सागर ने घेरा हो। अल्लाह तो तुझसे लगा ही हुआ है; क्योंकि अल्लाह न लगा हो तो तू बच ही न सकेगा, एक क्षण न जीएगा, श्वास भी न चलेगी, हृदय भी न धड़केगा। वह तो अल्लाह तुझसे लगा है: इसलिए तू धड़कता है, चलता है, श्वास है, जीवन है। तू गलत भी हो जाए तो भी अल्लाह लगा हुआ है। चोर भी हो जाए, हत्यारा भी हो जाए, तो भी अल्लाह लगा हुआ है। क्योंकि अल्लाह के बिना हत्यारा भी श्वास न ले सकेगा, चोर का हृदय भी न धड़केगा। कहीं वृक्ष की हरियाली में, कहीं झरने के नाद में, कहीं पर्वत के एकांत में, कहीं बाजार के शोरगुल में—जिसने बहुत तरह से अपना मंदिर बनाया है। सारा जगत उसके ही मंदिर के स्तंभ हैं! सारा आकाश उसके ही मंदिर का चंदोवा है! सारा विस्तार उसकी ही भूमि है! तुम इस अल्लाह को पहचानना शुरू करो, इससे लगो।

अकथ कहानी प्रेम की

With Love & Gratitude

Swami Dhyan Vibodh
Dehradun

अनिल सरस्वती

सितारे, महासागर और इंसान

पृथ्वी पर महासागरों की कहानी हमारे जीवन की कहानी है। हमारे ग्रह का अधिकतर हिस्सा इन सागरों से ढका है—जिनसे पैदा हुआ जल-चक्र हमारी पृथ्वी और वातावरण को जीवन देता है। एक अद्भुत बात यह है कि हमारे ग्रह और महासागरों की डोर अंतरिक्ष में दूर-दूर फैले सितारों और आकाशगंगाओं से जुड़ी है।

पानी का हर कण ऑक्सीजन के एक अणु और हाइड्रोजन के दो अणुओं से मिल कर बनता है। जब सृष्टि के प्रारम्भ में एक बड़ा धमाका हुआ और विशालकाय तारों और आकाशगंगाओं ने जन्म लिया, तभी इन तारों के अंतरतम में हाइड्रोजन का उद्गम हुआ। ये सितारे हमारे सूर्य से भी बहुत बड़े थे। हमारी आकाशगंगा में जल के विशालकाय भंडार गैस के रूप में फैले हुए हैं।

हमारी आकाशगंगा में धूल और गैस का एक विशालकाय बादल

है जिसे ओरिओन नेब्यूला कहते हैं। इस नेब्युला से नए-नए सितारे और ग्रह निरंतर जन्म लेते रहते है। इसका अधिकतर हिस्सा हाइड्रोजन गैस से बना है और यह प्रति दिन इतना पानी पैदा करता है जिससे हमारे महासागरों को हर दिन 60 बार भरा जा सकता है। लेकिन हमारे हिस्से का पानी हमें मिल चुका है। हमारी धरती का सत्तर प्रतिशत हिस्सा पानी से ढका है जिसमें 1.35 अरब घन किलोमीटर जल भरा है। लगभग 4 अरब वर्ष पूर्व जब धरती आग के गोले से बदल कर शीतल होती हुई ठोस रूप लेने लगी थी तब इसमें हल्की और भारी चट्टानें अलग होने लगीं। हल्की चट्टानें उभर कर ऊपर आ गयीं जिनसे पृथ्वी की सतह का निर्माण हुआ। भीतर की विशाल पिघली हुई चट्टानें जब ठंडी होने लगीं, उनमें से पानी के विशाल भंडार बाहर आये और महासागर बन कर पूरी धरती पर छा गए।

3 अरब वर्ष पूर्व इन्हीं महासागरों में पहले जीवन का प्रादुर्भाव हुआ और सारे सागर समुद्री जीवों से भर गए। इसी समय पृथ्वी के भूमि तल पर वनस्पति का उद्‌गम हुआ और वनों ने धरती को हरा भरा कर दिया। लगभग तीन सौ लाख वर्ष पूर्व इन महासागरों से जीव बाहर आकर पृथ्वी की सतह पर फैलने लगे। पूरी पृथ्वी भी अब जीव जंतुओं से भर गयी। इनका स्वरूप आज के जीवों से बिलकुल अलग था।

तब से लेकर पृथ्वी का वातावरण कई बार परिवर्तित हुआ। इस धरती पर ऐसी घटनाएं घटीं जिसके कारण पांच बार लगभग सारा जीवन समाप्त हो गया और नए प्राणियों ने जन्म लिया। इन घटनाओं को पांच ग्रेट एक्सटिंक्शन कहा जाता है। आज जो जीव धरती पर हैं वे इसी विकास क्रम से उभरे हैं और मनुष्य इस विकासक्रम के शिखर पर है।

आज हमारी आंखों के सामने 4 अरब वर्ष पूर्व पैदा हुए महासागर मर रहे हैं—और हम मनुष्य जो इन्हीं से जन्मे हैं, इसके लिए जिम्मेवार हैं। इन महासागरों के जीव तीव्र गति से लुप्त हो रहे हैं। मनुष्यों की बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए हर दिन लगभग 2000 लाख मछलियां मार दी जाती हैं। इन सागरों में प्राचीन कोरल रीफ हैं जिन पर लगभग 10 लाख समुद्री जीवों का जीवन निर्भर है। समुद्रों में बढ़ता हुआ प्रदूषण इन कोरल रीफ़ों की हत्या कर रहा है और लाखों जीव लुप्त हो रहे हैं।

हमारे आधुनिक उद्योग समुद्रों में भयंकर प्रदूषण करने वाले रसायन फेंक रहे हैं। पांच खरब से भी अधिक प्लास्टिक के टुकड़े इन महासागरों का गला घोंट रहे हैं। हमारे महासागर बहुत अधिक गर्म और ऑक्सीजन विहीन हो चले हैं। अगर ऐसे ही चलता रहा तो अगले 50-60 साल में इन महासागरों से सारा जीवन लुप्त हो जाएगा और वह समय होगा जब हम अपनी धरती के संपूर्ण जीवन को मौत के मुंह में धकेल देंगे।

मनुष्य, जो इस प्रकृति के विकासक्रम की पराकाष्ठा है, उसका काम है इस अद्‌भुत सृष्टि के जीवन की रक्षा करना लेकिन हम अपने ही जीवन के दुश्मन बन गए हैं। हमें स्मरण रखना होगा कि हम इस अनंत शून्यता, सितारों की धूल और महासागरों की संतान हैं। हमें जागना होगा इससे पहले कि छठवीं ग्रेट एक्सटिंक्शन आ जाए जो इस पृथ्वी पर महाविनाश की आखिरी घटना होगी।

जागने का समय है आज, अभी

मैं अभी भी आशा के विपरीत आशा किये चला जाता हूं, कि शायद जिस खतरनाक परिस्थिति में मनुष्य स्वयं को ले आया है, उसमें वह खतरा उसे जगा दे। लेकिन मेरे हृदय में एक उदासी सी भी है, क्योंकि मैं देख सकता हूं कि यदि कुछ भी न किया गया तो मनुष्यता का अंत निकट ही है।

और वह केवल न हमारा अंत होगा, बल्कि यह चेतना को पैदा करने के उस स्वप्न का भी अंत होगा जिसे इस अस्तित्व ने देखा है। केवल इस ग्रह पर वह स्वप्न साकार हुआ है। करोड़ों तारे हैं और हर तारे के दर्जनों ग्रह हैं; और उन सब में से केवल इस छोटे से ग्रह पर यह चमत्कार हुआ है कि न केवल यहां जीवन जन्मा है बल्कि चेतना भी उतरी है। न केवल चेतना जन्मी है, बल्कि ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने चेतना के शिखरों को छुआ हैः कोई गौतम बुद्ध, कोई सुकरात, कोई पाइथागोरस, कोई च्वांग्त्ज़ू।

इस ग्रह से जीवन का विदा होना इस पूरे ब्रह्मांड को इतना दीन-हीन कर देगा कि फिर से चेतना की इस अवस्था तक लौटने में लाखों-करोड़ों वर्ष लग जाएंगे।

अब और समय गंवाया नहीं जा सकता। पहले ही बहुत देर हो चुकी है, जागने का समय अभी है—या फिर कभी नहीं।

ओशो, *दि हिडन स्प्लेंडर*

जबलपुर के
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय का नाम अब
शासकीय ओशो स्नातकोत्तर महाविद्यालय

जिस कॉलेज में ओशो लगभग नौ साल प्रोफेसर रहे उसका नाम शासकीय स्नातकोत्तर आर्ट व कॉमर्स महाविद्यालय था। मुझे वर्ष नहीं स्मरण है किन्तु जब मेरा भाषण वहां की सीनियर प्रो.डॉ रश्मि टंडन ने रक्खा उस समय प्रिंसिपल एक महिला थीं जिनका नाम स्मरण नहीं है। तब वे यही जानती थीं कि ओशो वहां पढ़े थे। मैंने उन्हें बताया कि पढ़े नहीं, लगभग नौ वर्ष पढ़ाये थे। और उनसे कहा था, 'आपसे निवेदन है कि आपके चैम्बर में आपकी चेयर के पीछे ऊपर दीवार पर गांधी जी का चित्र जो लगा है उसके बगल में ओशो का भी एक चित्र लगवाइये, इससे आपके कॉलेज की गरिमा बढ़ेगी।'

मैंने उस दिन अपने भाषण में तो यह बात कही ही थी बाद में कुछ उत्साही विद्यार्थियों से मिलकर कॉलेज का नाम चेंज करवाने के लिये प्रयास करने की बात की जिसमें ओशो का नाम आता हो, डॉ. रश्मि जी से भी यह बात कही। अंततः उस कॉलेज का नाम राजधानी भोपाल से स्वीकृत हो गया—ओशो शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय।

11 दिसंबर 2023 को वहां एक कार्यक्रम आयोजित किया गया जिसका नाम था 'ओशो जन्मोत्सव एवं पूर्व छात्र-मिलन।' इस कार्यक्रम में मुझे भी आमंत्रित किया गया। मुझे कहा गया कि यह कार्यक्रम 7 बजे से 10 बजे रात है किन्तु मैं 8 बजे तक आ सकता हूं क्योंकि शुरू में तो छात्रों के ही भाषण होंगे। मैं छात्रों का भी सुनना चाहता था अतः 6.55 पर पहुंच गया। लगभग एक दर्जन विशिष्ट

लोग मंच पर थे जिसमें मैं भी था। मुझे मालूम हुआ कि पूर्व छात्रों ने सुबह ओशो की उस ईज़ी चेयर पर पुष्प गुच्छ अर्पित किये जो पुस्तकालय में रखी है जिसपर बैठकर ओशो पुस्तकें पढ़ते रहे।

1977, 1978, 1979, 1980 तक के 250 पूर्व छात्र देश के विभिन्न शहरों से एकत्रित हुए थे। उनके चेहरे पर चमकती ख़ुशी देखकर हम सब ही अभिभूत थे। उनमें अनेक ने भाषण देते हुए दशकों बाद साथियों से मिलने के आनंद को तो प्रगट किया ही, लगभग हर एक ने बहुत भावपूर्ण ढंग से यह भी कहा कि हम धन्य हैं जो इस कॉलेज से पढे जहाँ ओशो के पावन चरण पड़े थे।

मंच पर मेरे ठीक बाएं विराजमान श्री आलोक मिश्रा, डिप्टी चेयरमैन, म.प्र. कांग्रेस, ओशो के बाबत बहुत जानकारियां रखते हैं। उन्होंने यह कहते हुए मेरी ओर देखा कि ओशो 21 मार्च 1953 को भंवर ताल गार्डन में मौलश्री वृक्ष तले ज्ञान को उपलब्ध हुए थे, यह जबलपुर के लिये सौभाग्य की बात है। मैंने संकेत से हां किया था। मेरे दाएं बैठे श्री यू. पी. शुक्ला, आई. पी. एस., डी. आई. जी. ने कहा कि ओशो से जबलपुर शहर का नाम जगत में उजागर हुआ है। शहर के मेयर जगत बहादुर सिंह 'अन्नू' ने अपने संक्षिप्त भाषण में वादा किया कि वे शीघ्र ही ओशो को लेकर एक विश्व स्तर का कार्यक्रम रखेंगे। कश्मीर से पधारे श्री परम शिवम का भाषण ओशो पर बेहद ऊर्जा व संवेदना से भरा रहा। उन्होंने जोरदार ढंग से कहा कि मनुष्य का भविष्य ओशो पर ही निर्भर है। वे इतने भाव में थे कि जब तक वे बोले मेरी आंखें गीली रहीं।

मैंने ओशो के जबलपुर प्रेम के उदाहरण देते हुये बताया कि 58 वर्ष 39 दिन के अल्प जीवन काल में वे सर्वाधिक समय लगभग 20 वर्ष जबलपुर में रहे। ओशो 30 जून 1970 को मुंबई रहने जाने को थे। 28 जून को शहीद स्मारक भवन में अभिनंदन समारोह रखा गया जिसमें ओशो ने कहा था कि 'मैं मुंबई अवश्य जा रहा हूं किन्तु जबलपुर छोड़कर नहीं जैसा कि एक मित्र ने कहा। जबलपुर छोड़ना तो सम्भव नहीं है। जबलपुर तो मेरे हाड़, मांस, मज्जा में समाया हुआ है। और जहां भी जाऊंगा जबलपुर का ही कहलाऊंगा।'

यह कॉलेज धन्यभागी है जहां वे नौ वर्ष के लगभग पढ़ाये और इसके नाम को ओशो से जोड़ा गया। और आज उनका जन्मोत्सव इतनी भव्यता के साथ मना रहा हूं। मैं भी धन्यभागी हूं जो इस भव्य कार्यक्रम में शामिल होने का अवसर मिला।

अंत में डॉ ए. सी. तिवारी, प्रिंसिपल व सभा के अध्यक्ष ने इस दिन को बड़ा शुभ दिन कहा, और दूर-दूर से पधारे सभी पूर्व छात्रों को आभार व्यक्त किया। डॉ प्रशांत मिश्रा को सभी को आमंत्रित करने व पूरी व्यवस्था सम्हालने के लिये बहुत धन्यवाद दिया। सारे उपस्थित लोगों को ओशो का एक एक खूबसूरत मेमेंटो, शाल व नारियल देकर सम्मानित किया गया। उसके बाद भोजन की भी व्यवस्था थी। ओशो का बहुत बड़ा सा चित्र कॉलेज के सामने लगा था। पूरा कॉलेज रोशनी से जगमग था।

अगले दिन जबलपुर से प्रकाशित सारे समाचार पत्रों ने व टी वी चैनल्स ने बहुत शानदार रिपोर्टिंग की।

स्वामी अगेह भारती

श्री एम के एस भावनगर यूनिवर्सिटी में
ओशो पीठ की स्थापना

हाल ही में भावनगर, गुजरात स्थित श्री एम के एस भावनगर यूनिवर्सिटी में ओशो पीठ की स्थापना की गयी है। शिक्षा पर ओशो की विहंगम दृष्टि को प्रायोगिक रूप से क्रियान्वित करने व विद्यार्थियों को ध्यान उपलब्ध करवाने के उद्देश्यों पर आधारित इस प्रकल्प को साकार करने में प्रमुख योगदान दिया है ओशो संघम, यू एस ए ने। यूनिवर्सिटी में ओशो पीठ स्थापित करने के प्रस्ताव को मूर्त रूप दिया यूनिवर्सिटी के दूरदर्शी पदाधिकारियों ने, जिनमें वाइस चांसलर डॉ एम एम त्रिवेदी, डॉ गिरीश पटेल, प्रो डॉ सतीश शर्मा, प्रो डॉ भरत भट्ट मुख्य रूप से शामिल हैं। श्री एम के एस भावनगर यूनिवर्सिटी से संबद्ध 32 कॉलेज हैं जिनमें 56000 नये छात्र हर वर्ष प्रवेश पाते हैं।

4 जनवरी को ओशो पीठ की स्थापना के उपलक्ष्य में यूनिवर्सिटी में एक विशेष सम्मेलन आयोजित किया गया—योग और ध्यानः आज के युवा की जरूरत। सम्मेलन में कोई 1000 छात्रों, शिक्षकों व ओशो प्रेमियों ने हिस्सा लिया।

सम्मेलन की अध्यक्षता वाइस चांसलर डॉ एम एम त्रिवेदी ने की। मंच पर ओशो संघम के ट्रस्टी मा प्रेम निर्धूम, स्वामी रमन भारती व स्वामी प्रेम समर्पण भी उपस्थित थे।

जैसा कि ओशो से संबंधित किसी भी कार्यक्रम की विशेषता होती है, यह कार्यक्रम भी उत्सवमय था—संगीत व नृत्य से भरपूर।

सम्मेलन में ओशो पीठ द्वारा शुरू किए जाने वाले दो कोर्सेज़ की घोषणा भी की गयी जो ध्यान पर आधारित होंगे। सिलेबस में ध्यान के विविध पहलुओं पर अध्ययन के साथ-साथ उसकी विधियों के प्रयोग भी सम्मिलित होंगे। यह निश्चित ही उस शिक्षा व्यवस्था की ओर बढ़ा हुआ एक ऐतिहासिक कदम है, जिसकी परिकल्पना ओशो ने दी है।

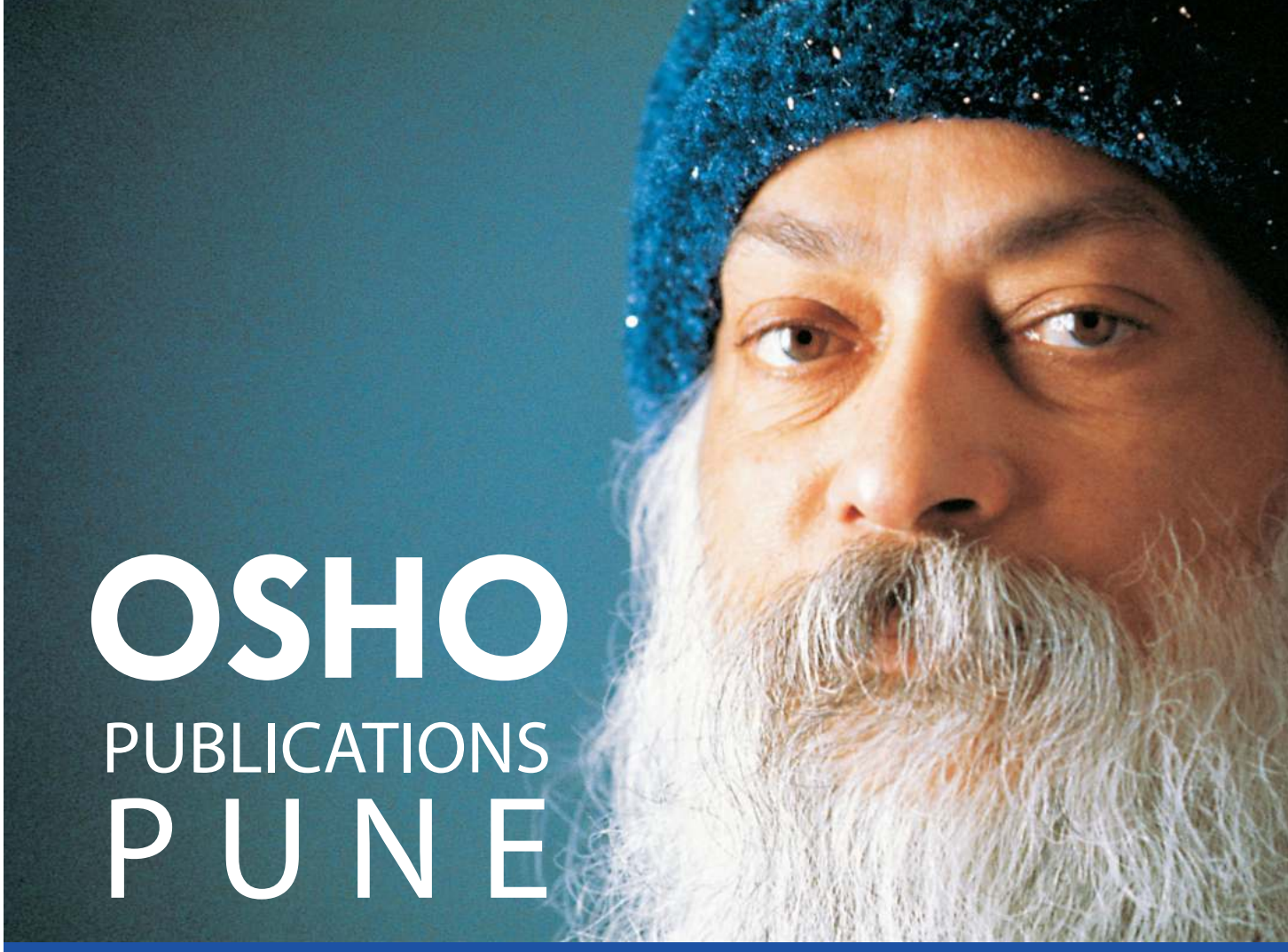

OSHO
PUBLICATIONS
PUNE

visit us at

New Delhi World Book Fair 2023
Pragati Maidan
New Delhi

For all OSHO books, OSHO Talks on audio & Video, Meditation music and Music from the World of Osho

February 10 to 18

Our location
Hall No. 5 Stall No. F-03

OSHO Media International

पहले खुद से प्रेम करें, शुरुआत तो खुद से संभव है...

हाल ही में जर्मनी की मार्टिन लूथर यूनिवर्सिटी में एक स्टडी हुई। इस स्टडी के मुताबिक सेल्फ कंपेशन और रिलेशनशिप में गहरा संबंध है। कहने का आशय यह है कि कोई व्यक्ति स्वयं के प्रति जितना संवेदनशील और जिम्मेदार होगा, रिश्ते में उसकी संवेदनशीलता और दायित्वबोध भी उतना ही गहरा होगा।

इसे यूं समझिए कि आप अपने रिश्तों में कैसा व्यवहार करते हैं, वो खुद के साथ किए गए आपके व्यवहार का ही प्रतिबिंब होता है। यानी अगर आप खुद से नफरत करते हैं तो इस बात की संभावना बहुत अधिक है कि आप रिश्तों में भी वैसे ही पेश आएंगे। आप अपने प्रति गैर-जिम्मेदार हैं तो रिश्ते की जिम्मेदारी के प्रति भी लापरवाह ही होंगे।

इस स्टडी के बाद कई कपल्स को सेल्फ कंपेशन (स्व-करुणा) थैरेपी दी गई। इससे उनके रिश्तों में जबरदस्त सुधार देखने को मिला। अगर आप खुद की कद्र करना सीख लें तो आपके रिश्ते भी मधुर हो सकते हैं।

ओशो की अंतर्दृष्टि

जब तक आप प्रेम को एक संबंध समझते रहेंगे, एक रिलेशनशिप, तब तक आप असली प्रेम को उपलब्ध नहीं हो सकेंगे। वह बात ही गलत है। वह प्रेम की परिभाषा ही भ्रांत है।

जब तक मां सोचती है कि बेटे से प्रेम, मित्र सोचता है मित्र से प्रेम, पत्नी सोचती है पति से प्रेम, भाई सोचता है बहिन से प्रेम, जब तक संबंध की भाषा में कोई प्रेम को सोचता है, तब तक उसके जीवन में प्रेम का जन्म नहीं हो सकता है।

संबंध की भाषा में नहीं, किससे प्रेम नहीं—मेरा प्रेमपूर्ण होना। मेरा प्रेमपूर्ण होना अकारण, असंबंधित, चौबीस घंटे मेरा प्रेमपूर्ण होना। किसी से बंध कर नहीं, किसी से जुड़ कर नहीं, मेरा अपने आप में प्रेमपूर्ण होना। यह प्रेम मेरा स्वभाव, मेरी श्वास बने। श्वास आए, जाए, ऐसा मेरा प्रेम—चौबीस घंटे सोते, जागते, उठते, हर हालत में मेरा जीवन प्रेम की एक भाव-दशा, एक लविंग एटिट्यूड, एक सुगंध, जैसे फूल से सुगंध गिरती है।

किसके लिए गिरती है? राह से जो निकलते हैं उनके लिए? फूल को शायद पता भी न हो कि कोई राह से निकलेगा। किसके लिए, जो फूल को तोड़ कर माला बना लेंगे और भगवान के चरणों में चढ़ा देंगे, उनके लिए? किसके लिए—फूल की सुगंध किसके लिए गिरती है?

किसी के लिए नहीं। फूल के अपने आनंद से गिरती है। फूल के अपने खिलने से गिरती है। फूल खिलता है, यह उसका आनंद है। सुगंध बिखर जाती है।

दीये से रोशनी बरसती है, किसके लिए? कोई अंधेरे रास्ते पर न भटक जाए इसलिए? किसी को रास्ते के गड्ढे दिखाई पड़ जाएं इसलिए? दिखाई पड़ जाते होंगे यह दूसरी बात है; लेकिन दीये की रोशनी अपने लिए, अपने आनंद से, अपने स्वभाव से गिरती है और बरसती है।

प्रेम भी आपका स्वभाव बने—उठते, बैठते, सोते, जागते; अकेले में, भीड़ में, वह बरसता रहे फूल की सुगंध की तरह, दीये की रोशनी की तरह, तो प्रेम प्रार्थना बन जाता है, तो प्रेम प्रभु तक ले जाने का मार्ग बन जाता है, तो प्रेम जोड़ देता है समस्त से, सबसे, अनंत से।

इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रेम तब संबंध नहीं बनेगा। वैसा प्रेम चौबीस घंटे संबंध बनेगा, लेकिन संबंधों पर सीमित नहीं होगा। उसके प्राण संबंधों के ऊपर से आते होंगे। गहरे से आते होंगे। तब भी पत्नी पत्नी होगी, पति पति होगा, पिता पिता होगा, मां मां होगी। तब भी बेटे पर प्रेम गिरेगा; लेकिन बेटे के कारण नहीं, मां के अपने प्रेम के कारण। तब भी पत्नी का प्रेम चलेगा, बहेगा; लेकिन पति के कारण नहीं, अपने कारण। कॉज़ेलिटी भीतर होगी, भीतर से आएगा और बहेगा। बाहर से कोई खींचेगा और बहेगा नहीं, भीतर से आएगा और बहेगा। वह अंतरभाव होगा, बाहर से खींचा गया नहीं।

अभी हम सब बाहर से खींचे गए प्रेम पर जी रहे हैं, इसलिए वह प्रेम कलह बन जाता है। जो भी चीज जबर्दस्ती खींची गई है, वह दुख और पीड़ा बन जाती है। जो भीतर से स्पांटेनियस, सहज प्रकट हुई है, वह बात और हो जाती है। वह बात ही और हो जाती है।

ओशो, *शून्य की नाव, प्रवचन 6*

ओशो ध्यान शिविर

असंभव क्रांति

20 मार्च सायं से 25 मार्च तक

एक अनूठा ध्यान शिविर, जिसका संचालन ओशो की आवाज़ में उनकी
मौन व शून्य उपस्थिति में होगा
ओशो के द्वारा दिये निर्देश हमें अपने अंतर्तम की गहराइयों तक ले चलेंगे

स्थल : ओशो उपवन
हरणि महादेव, भीलवाड़ा, राजस्थान

सहयोग राशि (भोजन व आवास सहित) :
600 रुपये प्रतिदिन (सामान्य व्यवस्था)
1000 रुपये प्रतिदिन (ए सी व्यवस्था)

संपर्क सूत्र :
स्वामी चेतन रंजीत 9413057057

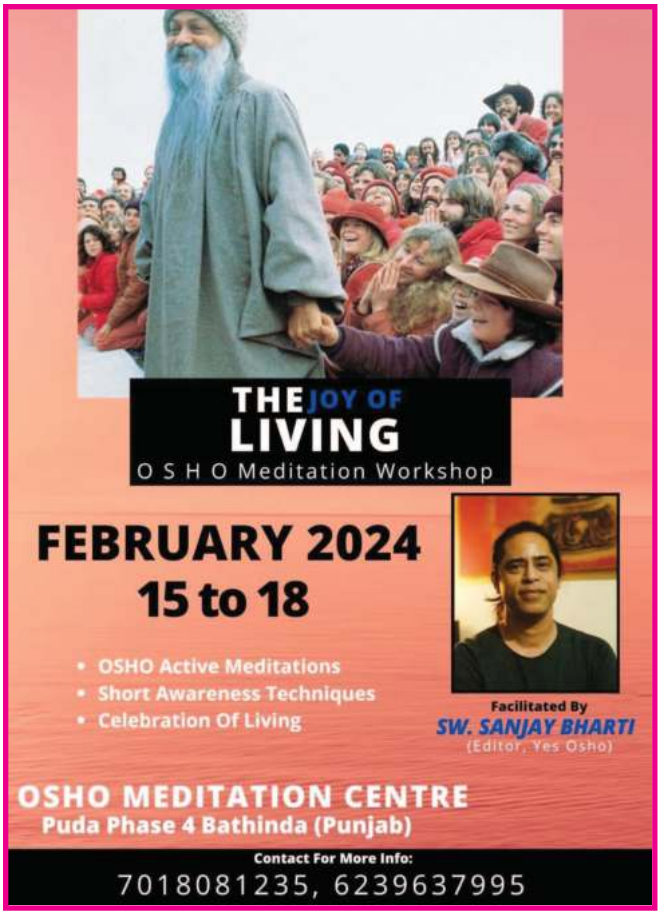

लाखों लोग ध्यान से चूक जाते हैं क्योंकि ध्यान ने गलत अर्थ ले लिए हैं।
ध्यान बहुत गंभीर लगता है, उदास लगता है, उसमें कुछ चर्च वाली बात आ गई है; लगता है यह उन्हीं लोगों के लिए है जो या तो मर गए हैं या करीब-करीब मर गए हैं—जो उदास हैं, गंभीर हैं, जिनके चेहरे लंबे हो गए हैं; जिन्होंने उत्साह, मस्ती, प्रफुल्लता, उत्सव सब खो दिया है।
यही तो ध्यान के गुणधर्म हैं : जो व्यक्ति वास्तव में ध्यानी है वह खेलपूर्ण होगा; जीवन उसके लिए मस्ती है, जीवन एक लीला, एक खेल है। वह जीवन का परम आनंद लेता है। वह गंभीर नहीं होता, विश्रामपूर्ण होता है।

ओशो

डॉ. आत्मो मनीष, एम एस

मृत्यु के ये अमूल्य पल क्यों न जी भर जी लिये जाएं?

अगर हम कहें कि हमारा समाज एक ऐसा समाज बनता जा रहा है जहां मृत्यु की सहज स्वीकृति नहीं है तो इसमें अतिशयोक्ति न होगी। इस समाज में बुढ़ापे को लगभग किसी बीमारी-सा देखा जाने लगा है। ज्यादा से ज्यादा समय तक युवा दिखने की होड़ सी लगी हुई है। कई वैज्ञानिक अब ऐसी सर्जरी और ऐसी दवाएं लेकर आ रहे हैं जिससे आप लंबे समय तक युवा दिखेंगे। एंटी एजिंग क्रीम्स तो आमेज़ान पर सब से ज्यादा लोकप्रिय प्रोडक्ट हैं, इनकी कीमतें देख कर आपकी आंखें खुली रह जायेंगी, पर लोग इन्हें धड़ल्ले से खरीद रहे हैं।

आज का मनुष्य विज्ञान के दम पर कई सौ साल तक जीने के सपने संजो रहा है और जन्म व मृत्यु की सहज प्रक्रिया और उसके महत्व से लगातार दूर होता जा रहा है।

अगर हम कुछ दशकों पहले की बात करे तो हम पायेंगे कि वह समाज जन्म और मृत्यु जैसी प्रक्रिया के बहुत करीब था। बच्चों का जन्म भी घर पर होता था और बीमारी से पीड़ित परिवार जन की मृत्यु भी घर पर होती थी—और यह सामाजिक स्वास्थ्य की बहुत बड़ी निशानी थी। घर के बच्चे अपनी आंखों से जन्म और मृत्यु का खेल देखते थे। वे जन्म और मृत्यु को लेकर ज्यादा सहज थे। रोज उस व्यक्ति के साथ समय बिताना, जो अब जाने वाला है उसका खयाल रखना, यह प्रक्रिया

मानसिक रूप से पूरे परिवार को अंतिम विदाई के लिए पूरी तरह तैयार करती थी। फिर नये बच्चे के आगमन पर पूरे घर की ऊर्जा जैसे नयी हो जाती है, कैसे नया मेहमान परिवेश में शामिल होता है, यह सब देखना एक परिपक्व मनुष्य के जन्म में सहायक होता था। अगर आज के समय हम देखें तो जन्म और मृत्यु दोनों ही अस्पताल में होते है।

यह घटना हाल ही की है कि क्यों मुझे यह खयाल आया कि हमारा समाज मृत्यु जैसी अद्भुत घटना को लेकर बहुत अपरिपक्व होता जा रहा है। मेरे एक करीबी मित्र के पिताजी कैंसर से पीड़ित थे, उनको लेकर जब उनके डॉक्टर से मेरी बातचीत हुई तो उसने मुझे बताया कि ज्यादा से ज्यादा एक महीना है उनके पास। डॉक्टर बोला आप उन्हें बताइएगा नहीं कि उन्हें खतरनाक कैंसर है और उनके पास एक महीने से भी कम समय बचा है। मेरे मित्र ने भी मुझसे यही कहा, उनके रिश्तेदार मिले तो उन्होंने भी मुझे यही कहा।

जब मैं अपने मित्र के साथ उसके पिता से अस्पताल में मिला तो वह ऐसे व्यवहार कर रहा था जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। जब वह फोन पर बात करने कमरे से बाहर गया तो वे मुझसे बोले, 'मुझे पता है मुझे कैंसर है, पर डॉक्टर से लेकर मेरे बच्चे तक कोई इस बारे में बात नहीं कर रहा। सब कह रहे हैं मुझे कोई छोटी-मोटी बीमारी है जो जल्दी ठीक हो जाएगी, पर महीना हो गया कोई मुझे घर क्यों नहीं ले जाता? अब तो बस डॉक्टर और नर्स के भरोसे हूं। अब मुझसे लोग मिलने भी नहीं आते, बस मुझे अकेला इस अस्पताल में पटक रखा है। तुम डॉक्टर हो, तुम मुझे यहां से छुट्टी दिला कर घर ले जाओ।' उनकी स्थिति देख मेरी आंखें भर आयीं पर मैं कुछ न कर सका। कुछ दिनों बाद ही, उनका अस्पताल में देहावसान हो गया।

जो लोग किसी ऐसी बीमारी से पीड़ित हैं, जहां अंतकाल निकट है, ऐसे लोगों को डॉक्टर, नर्स, रिश्तेदार, घर-परिवार के लोग अक्सर नजर अंदाज़ करते हैं—बस जैसे वे एक उत्तरदायित्व हों। अगर ऐसे समय व्यक्ति से बातचीत की जाए, उसके विचार जाने जाएं, उसकी किसी इच्छा के बारे में बात की जाए जिसे समय रहते पूरा किया जा सकता हो, तो हम मृत्यु की ओर उसके ट्रांज़िसहन को उसके लिए तो सुंदर बना ही सकते हैं, अपने स्वयं के लिए भी मृत्यु की घटना को सहज बना सकते हैं।

ऐसी स्थिति में सत्य को अनदेखा करना या वस्तु स्थिति को स्वीकार न करना व्यक्ति को और जल्दी मृत्यु के मुंह में धकेलना होगा। डॉक्टर्स तो इस बात को अंतिम समय तक नहीं स्वीकारते की मरीज़ मरने वाला है। अगर हम व्यक्ति की स्थिति को यथावत स्वीकारें, इस बारे में बातचीत करें, तो मरने से पहले भी बहुत कुछ बदल सकता है।

मैंने कई बार देखा है परिवारजन अपने करीबी को किसी दुरूह बीमारी से मरता देख कोने में जा कर रो रहे हैं—आंखें सूजी हुई है, लेकिन चेहरे पर नकली हंसी है, सब ठीक है और सब ठीक हो जाएगा जैसे भाव हैं। यह बहुत नाज़ुक मसला है, ऐसे में मरीज से बातचीत किस प्रकार की जाये इसकी हमें कोई ट्रेनिंग नहीं है। लेकिन आप अगर व्यक्ति से गहराई से जुड़े हैं तो तो आप में निहित बुद्धिमत्ता मरीज को पूरी तरह खोल सकती है।

अगर हम ऐसा खेल खेलते रहे जैसे कुछ नहीं हुआ है, तो जाते हुए व्यक्ति का ऐसा बहुमूल्य समय हम बर्बाद कर सकते हैं जिसमें वह बहुत कुछ कहना चाहता था पर हमारे इस सब ठीक-है वाले नाटक के कारण वह कुछ न कह सका—उसे सब कह कर शांति से जाने का मौका हमने गवां दिया।

यह जरूरी नहीं है कि हर व्यक्ति खुले, लेकिन हमारी तरफ़ से एक ऐसे स्पेस का निर्माण होना चाहिए कि कठिन बीमारी से जूझ रहा व्यक्ति अगर उसे कुछ कहना हो तो वह कह सके। उसे जितना मानवीय संपर्क मिल सके उतना बेहतर होगा। ऐसी क्या चीज है जो उन्हें परेशान कर रही है, उन्हें किस बात का दुख है, जीवन में वे क्या करना चाहते थे और नहीं कर पाये—ऐसी कई चीजें हैं जिन पर दृढ़ बीमारी से ग्रस्त व्यक्ति को धीरे धीरे खोला जा सकता है। हो सकता है उसके पास शेयर करने के लिए कुछ ऐसी बातें हो जो हमारे जीवन में परिवर्तन का सूत्रपात कर सकें।

ऐसे समय यह कहना ठीक न होगा कि अब आपके बचने की कोई उम्मीद नहीं है। मरीज को न चाहते हुए भी कहीं

गहराई में यह पता होता है कि अब ज्यादा समय नहीं है।

हो सकता है अपने जीवन में अपने परिवारजनों को मुखर रूप से यह न बताया हो कि आप उनसे प्यार करते हैं और उनके प्रति चिंतित रहते हैं। पर किसी कठिन बीमारी की स्थिति में आपका प्रेम और आपकी मानवीयता किसी के अंतिम दिनों को खूबसूरत और जीने योग्य बना सकते हैं।

आजकल गंभीर बीमारियों के मरीज़ो के वार्ड नहीं होते, उन्हें पूरी तरह आइसोलेट कर दिया जाता है। घर परिवार वालों को भी बस कुछ देर के लिए देखने या मिलने दिया जाता है। ऐसे में मृत्यु से जूझ रहे मरीज़ की क्या स्थिति होती होगी, यह बहुत अमानवीय सिस्टम सा लगता है। पर इसमें सबको सहूलियत है—एक तो आप अपने परिजन को तिल-तिल मौत की ओर जाता नहीं देखते फिर आप उसकी मृत्यु के भी गवाह नहीं होते। डॉक्टर और नर्सों के लिए यह रोज़ का काम है उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। हम अपने भय के कारण एक बहुत ही रहस्यमय और हमें जगाने वाली प्रक्रिया से वंचित हो जाते है। और फिर अपने परिजन को वह सुंदर विदाई भी नहीं दे पाते जिसमें वह एक संतुष्टि के साथ मृत्यु में प्रवेश कर सके। सोचें।

मां का उत्तरदायित्व : बच्चों का विवाह बिना प्रेम के न होने दे

यह नारियों के सामने है सवाल कि वे एक ऐसी दुनिया बनाने की कोशिश करें...और वे बना सकती हैं, क्योंकि बेटे उनके हैं, बेटियां उनकी हैं...वे चाहें तो एक ऐसी दुनिया बना सकती हैं जहां प्रेम के बिना विवाह नहीं होगा, वे एक ऐसी दुनिया बना सकती हैं जहां कि आने वाले बेटे और बेटियों के लिए प्रेम की सारी सुविधा होगी।

बिना प्रेम के एक व्यक्ति के साथ बंध जाना कैसी अशोभन बात है! बिना प्रेम के एक व्यक्ति के साथ जीवन भर जीने की चेष्टा करनी, कितनी यांत्रिक बात है! लेकिन हमें पता ही नहीं चलता। हम सोचते हैं—विवाह पहले हो जाएगा, फिर धीरे-धीरे प्रेम आ जाएगा।

धीरे-धीरे प्रेम नहीं आएगा, धीरे-धीरे कलह आएगी, जो कि हर घर में दिखाई पड़ती है। चौबीस घंटे कलह चलेगी। लेकिन समाज का इंतजाम ऐसा है कि कितने ही लड़ो, भाग नहीं सकते हो लड़ाई से, वहीं लड़ाई जारी रखो।

मैंने सुना है, एक घर में एक छोटी बच्ची और एक छोटा लड़का, दोनों जोर से लड़ रहे थे। उनकी मां ने उन्हें डांटा और चिल्लाया कि क्यों लड़ते हो? कितनी दफे मना किया है कि लड़ो मत! उस बेटी ने कहा, हम लड़ नहीं रहे हैं, वी आर प्लेइंग मम्मी एंड डैडी। हम तो मम्मी और डैडी का खेल कर रहे हैं, हम लड़ नहीं रहे हैं। वह दिन-रात चल रहा है न मम्मी-डैडी का खेल, बच्चे देख रहे हैं। क्या खेल चल रहा है प्रेम के नाम पर! एक लंबी कलह चल रही है। हर आदमी उबा हुआ है। लेकिन कुछ फिक्र नहीं की जा रही है कि वह ऊब कहां से पैदा होती है। इसी ऊब में बच्चे पैदा होते चले जाते हैं, उनकी कतार इकट्ठी होती चली जाती है। इस कलह और ऊब में जो बच्चे पैदा होते हैं वे कभी भी मनुष्य-जाति के श्रेष्ठ नमूने नहीं हो सकते। श्रेष्ठ नमूने बहुत गहरे प्रेम से पैदा होते हैं। लेकिन प्रेम कहां है?

ज्योतिषी इंतजाम करते हैं कि दो आदमियों की शादी होनी चाहिए कि नहीं। ज्योतिषी इंतजाम करते हैं! ज्योतिषी क्या इंतजाम कर सकते हैं? जन्मपत्रियां मिलाई जाती हैं कि दो आदमी ठीक गुजारेंगे कि नहीं। तो जरा जन्मपत्रियां मिलाने वालों की हालतें तो देख लो! जिनके विवाह हो गए हैं उनका हिसाब तो लगा लो कि वे कैसा गुजार रहे हैं! इस मुल्क में तो सबकी जन्मपत्री मिला कर ही होता है, तो यहां तो हम हिसाब लगा ही सकते हैं कि जन्मपत्री के मिलाने का क्या परिणाम हुआ है। जिंदगी नरक हो गई है। लेकिन कोई बोध नहीं है, कोई होश नहीं है कि हम क्या कर रहे हैं।

विवाह नहीं हो सकता शुभ, जब तक कि प्रेम से ही निष्पन्न न होता हो। प्रेम ही जब जुड़ने को आतुर होता हो, उसके बिना सब विवाह अनैतिक है।

लेकिन हमारी हालतें उलटी हैं। अगर दो व्यक्तियों में प्रेम हो तो उनके संबंध को हम अनैतिक कहेंगे। और दो व्यक्तियों को दो ब्राह्मण पत्रे मिला कर बांध देते हैं, और इनके संबंध को हम नैतिक कहते हैं! अगर एक युवक और युवती में प्रेम हो और उनको बच्चा पैदा हो जाए तो हम कहेंगे इल्लीगल है, नाजायज है। प्रेम से पैदा हुआ बच्चा इल्लीगल है, नाजायज है। और जिन दो व्यक्तियों के बीच कोई भी प्रेम नहीं है और विवाह से पैदा हुआ बच्चा लीगल है और जायज है। अजीब बात है। सिर्फ प्रेम से पैदा हुए बच्चे जायज हैं, विवाह से पैदा हुए बच्चे जायज नहीं हैं। अकेले विवाह से पैदा हुए सब बच्चे नाजायज हैं।

लेकिन अभी तो यही चल रहा है, अभी तो कथा यही है। कब बदलेंगे हम इसे? बहुत समय पक गया कि अगर आदमी की जिंदगी को थोड़े सुधार देने हैं, और अगर आदमी की जिंदगी में थोड़ी सुगंध और संगीत लाना है, अगर आदमी की जिंदगी में प्रेम के फूल खिलाने हैं, तो विवाह बंद होना चाहिए इस तरह का, जो प्रेम के बिना निष्पन्न हो जाता है। अच्छा होगा यह कि दुनिया में बहुत लोग अविवाहित हों, उससे उतना हर्जा नहीं है। लेकिन दुनिया में गलत ढंग से विवाहित लोग बहुत खतरनाक हैं।

स्त्री को अपनी स्वतंत्रता की खोज में प्रेम के अतिरिक्त किसी भी तरह...आने वाली बच्चियों को, आने वाली भविष्य की स्त्रियों को, आने वाले नारी के नये-नये रूपों को यह मन में बहुत साफ होना चाहिए कि प्रेम है, तो पीछे विवाह है; प्रेम नहीं है, तो विवाह नहीं है। अगर नहीं है प्रेम, तो विवाह की कोई जरूरत नहीं है। प्रेम आएगा, प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

लेकिन जो समाज है आज वह तो प्रेम का दुश्मन है। वह प्रेम को आने नहीं देता। वह क्यों नहीं आने देता प्रेम को? वह इसलिए नहीं आने देता कि अगर प्रेम पहले आ जाएगा तो यह आयोजित विवाह का क्या होगा? जहां प्रेम आ जाएगा तो फिर आयोजित विवाह नहीं चल सकते हैं। और आयोजित विवाह चलाना है। इसलिए बच्चे और बच्चियों को दूर रखो, फासले पर रखो, उनके बीच दीवालें खड़ी करो, बंदूक लगाए हुए पहरेदार खड़े कर दो। रोको उन्हें कि कहीं प्रेम न हो जाए। प्रेम की सब जगह हत्या करो।

और जब प्रेम की हत्या की जाएगी तो मनुष्य के नैसर्गिक जीवन की हत्या हो जाती है। प्रेम की हत्या के साथ ही स्त्री की हत्या हो जाती है। क्योंकि स्त्री अगर कुछ है तो प्रेम की एक प्यास है। स्त्री अगर कुछ है तो प्रेम की एक पुकार है। स्त्री अगर कुछ है तो प्रेम का एक बीज है। और जहां प्रेम की हत्या हो जाती है वहीं स्त्री की आत्मा समाप्त हो जाती है। जिस दिन दुनिया में प्रेम स्वीकृत होगा, सम्मानित और आदृत होगा, उसी दिन स्त्री सम्मानित, स्वीकृत और आदृत हो सकती है। स्त्री की आत्मा की घोषणा में प्रेम की घोषणा अत्यंत अनिवार्य है।

जो मांएं हैं, जिनकी उम्र हो चुकी, जिनकी बच्चियां अब बड़ी हो रही हैं, वे ध्यान रखें कि उनकी बच्चियों के विवाह न किए जाएं जब तक कि प्रेम उनके जीवन में फूल न लाने लगे।

लेकिन प्रेम से तो हम डरते हैं। युवकों और युवतियों को मिलने मत देना, क्योंकि हमें डर है कि कहीं उनके मिलने से अनीति न फैल जाए। जैसे कि आज अनीति कुछ कम है दुनिया में, अनीति कुछ कम है समाज में। अनीति न फैल जाए! मां-बाप की कुल चिंता इतनी है कि कहीं प्रेम न हो जाए। यह क्या हो रहा है?

और जब इतनी रुकावट डाली जाएगी, तो ध्यान रहे, अगर प्रेम के पैदा होने का समय बीत गया, तो प्रेम फिर कभी पैदा नहीं होगा। हर चीज का एक समय है। फूल के मौसम हैं, कली खिलने का वक्त है। प्रेम का भी एक समय है। अगर वह प्रेम का समय व्यतीत हो गया पहरेदारी में और दस-पांच साल बीत गए उस समय के जब कि बीज अंकुरित होता और प्रेम फैलता, उसकी पंखुड़ियां खिलतीं, तो ध्यान रहे, वह फूल अब पूरा कभी नहीं खिल सकेगा और जिंदगी भर के लिए प्रेम-शून्य जीवन हाथ में रह जाएगा।

यह बहुत बड़ा अपराध मनुष्य के साथ हो रहा है। इस देश में तो बहुत तीव्रता से हो रहा है। ध्यान रहे, प्रेम के भी खिलने का वक्त है, मौसम है। उस वक्त उसे पूरी सुविधा मिलनी चाहिए, उस वक्त उसे पूरी समझदारी मिलनी चाहिए, उस समय पूरा का पूरा उसे मौका मिलना चाहिए कि वह खिले।

लेकिन सब पहरे पर खड़े हो जाएंगे उसे न खिलने देने के लिए। और फिर हम चिल्ला कर कहेंगे कि दुनिया में प्रेम बहुत कम मालूम पड़ता है।

कम रहेगा! प्रेम को पैदा ही मत होने दो, बीज को अंकुरित मत होने दो, कली को फूल मत बनने दो, पौधे के पत्ते काट डालो, शाखाएं काट डालो और फिर कहो कि दुनिया में फूल बहुत कम मालूम होते हैं। दुनिया में प्रेम कम है, क्योंकि प्रेम को विकास की जो सुविधा चाहिए वह हम नहीं दे रहे हैं।

लेकिन पुरुष को प्रेम से बहुत मतलब नहीं है, यह ध्यान रहे। इसलिए मैं नारियों से यह कह रहा हूं। पुरुष को प्रेम से बहुत मतलब नहीं है। पुरुष के लिए जिंदगी के बहुत से कामों में प्रेम भी एक काम है। चौबीस घंटे में आधा घंटा प्रेम करने के लिए उसे मौका मिल जाए, पर्याप्त है; साढ़े तेईस घंटे उसे जरूरत नहीं है। पुरुष के लिए प्रेम बहुत से कामों में एक काम है; स्त्री के लिए प्रेम ही एकमात्र काम है, बहुत से कामों में एक काम नहीं है वह। स्त्री का पूरा व्यक्तित्व प्रेम है।

यह नारियों के सामने है सवाल कि वे एक ऐसी दुनिया बनाने की कोशिश करें...और वे बना सकती हैं, क्योंकि बेटे उनके हैं, बेटियां उनकी हैं...वे चाहें तो एक ऐसी दुनिया बना सकती हैं जहां प्रेम के बिना विवाह नहीं होगा, वे एक ऐसी दुनिया बना सकती हैं जहां कि आने वाले बेटे और बेटियों के लिए प्रेम की सारी सुविधा होगी।

अगर नारियों को यह स्पष्ट खयाल हो जाए कि उनके व्यक्तित्व की प्रेम असली आवाज है, तो आने वाली बच्चियों के व्यक्तित्व में प्रेम की पूरी संभावना को विकसित करने में मां को सहयोगी, मित्र और साथी बनना चाहिए। और यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रेम के बाद ही विवाह आए, प्रेम के पहले नहीं। जिस दिन प्रेम के पीछे विवाह आएगा, उसी दिन नारी को अपनी आत्मा मिल जाएगी। प्रेम से ही उसे आत्मा मिल सकती है।

नारी और क्रांति, प्रवचन 5

यूं ही बैठते-बैठते, बात बन गयी...

विज्ञान भैरव तंत्र की एक विधि पर आधारित कहानी

बचपन से ही हर साल गर्मियों की छुट्टियों में अंशु नानी और बड़ी बुआ दोनों के घर जाया करती थी। नानी का घर शहर से बाहर ग्रामीण क्षेत्र में था। बुआ का घर दूसरे शहर में कोई दो घंटे की दूरी पर, एक नदी के किनारे था। सब के साथ जल्दी ही घुल मिल जाने की उसकी आदत के कारण दोनों ही स्थानों पर उसकी कई सहेलियां बन गई थीं। ये सहेलियां साल भर उसके आने का इंतजार किया करती थीं। नानी के घर वह सहेलियों के साथ पेड़ पर चढ़कर आम खाती थी। बुआ के घर जाती तो सहेलियों के साथ नदी किनारे जाकर खेला करती। अब किशोरावस्था आने पर उसकी गतिविधियां बदल गईं। नानी के घर जाती तो उनसे बुनाई, क्रोशिया और पकवान बनाना सीखती और बुआ के घर जाती तो रोज सुबह फुफा जी के साथ नदी किनारे जाकर टहलती और उनके साथ खूब बातें किया करती थी। नदी के किनारे कुछ देर वे दोनों साथ बैठ कर नदी की लहरें देखा करते फिर फुफाजी कुछ देर तक आंख बंद करके बैठ जाते।

एक दिन वहां से लौटते समय उसने फुफा जी से पूछा नदी के किनारे तो वैसे ही इतनी शांति रहती है तो इसका अनुभव करने के बजाय आप आंख बंद करके क्यों बैठ जाते हैं? उन्होंने बताया कि जब तक हमारे मन के भीतर कोई उपद्रव चल रहा हो बाहर की शांति अच्छी नहीं लगती है। भीतर मौन न हो तो बाहर के वातावरण की शांति का मजा नहीं आता है। लेकिन आप बैठने से पहले बहती हुई नदी को क्यों देखते हैं? अंशु ने पूछा। फुफा जी ने कहा, जैसे नदी में पानी बहता रहता है, उसी तरह हमारे भीतर विचार बहते रहते हैं, नदी के किनारे खड़े होकर जल का प्रवाह देखने के बाद मन के किनारे खड़े होकर विचारों के प्रवाह को देखने में आसानी हो जाती है। लेकिन विचारों को देखने की जरूरत ही क्या है? अंशु ने पूछा। फुफा जी बोले, बिना कोई चुनाव किये विचारों का निरीक्षण करने से उनके प्रवाह में कमी आने लगती है, उनके बीच का अंतराल दिखाई देने पर मौन की स्पष्ट अनुभूति होती है, मैं यही करता हूं। ऐसा करने से क्या होता है? उसने पूछा। इसका कोई शाब्दिक उत्तर संभव नहीं है, अगर तुम्हारे मन में इसका उत्तर जानने की जिज्ञासा है, साहस है तो कभी तुम भी यही करके देखना—फुफाजी ने उसको चुनौती देते हुए कहा। तब अंशु कुछ नहीं बोली लेकिन मन ही मन उसने फुफाजी की चुनौती को स्वीकार कर लिया था।

जाड़े के दिनों में धुले हुए कपड़ों को धूप में फ़ैलाकर सुखाने के लिये अंशु छत पर जाया करती थी। उसके बाद वह अपनी कॉपी-किताबें भी छत पर ले आती थी और वहीं बैठकर पढ़ा करती थी। एकांत में अच्छी तरह से पढ़ाई हो जाती थी। उसके वहां बैठे रहने के कारण बंदर नहीं आते थे। इससे घर के कपड़े भी सुरक्षित रहा करते थे। एक दिन इसी तरह से पढ़ते हुए उसे फुफाजी की चुनौती याद आ गई। वहां पर देखने के लिये नदी का बहता पानी नहीं था। मैं क्या देखूं? यह सोचकर उसने खड़े होकर चारों ओर देखा। कुछ दूर पर एक पीपल का वृक्ष था। बहती हुई हवा से उसकी पत्तियां हिल रही थीं। वह उन पत्तियों को देखने लगी। कुछ देर पत्तियों को देखने के बाद वह नीचे बैठ गई। उसने रीढ़ को सीधा किया और आंखें बंद कर लीं। कुछ देर तक उसके स्मृति-पटल पर हवा से हिलती हुई पत्तियां दिखाई देती रहीं, फिर उसने इस पर ध्यान दिया कि उसे क्या अनुभव हो रहा है। जिस गद्दी पर वह बैठी हुई थी उस पर पड़ने वाले अपने भार को उसने अनुभव किया। माहौल में फैली हुई धूप की गर्मी और अपने चेहरे पर हवा के स्पर्श को उसने महसूस किया। नीचे सड़क से निकल रहे वाहनों का शोर, लोगों की आवाजें उसे बहुत साफ़-साफ सुनाई पड़ रहे थे। और अधिक सजग होने पर उसे भीतर आती और बाहर जाती साँस का बोध होने लगा। उसे लग रहा था कि उसके भीतर विचारों का प्रवाह भी कुछ कम होता जा रहा है। कुछ देर वह इसी तरह से बैठी रही। उसे लगा जैसे कि समय ठहर गया हो। फिर नीचे से मम्मी की आवाज आई,

वे उसे दोपहर के भोजन के लिये पुकार रही थीं। अपनी पुस्तकें समेट कर वह नीचे चली गई ।

इस तरह बैठकर अपने शरीर और चारों ओर वातावरण को अनुभव करना उसे बहुत अच्छा लगने लगा था। जब भी संभव होता तो वह यही किया करती थी। कुछ दिनों तक इस तरह से बैठने पर उसे लगा कि उसके भीतर एक अलग तरह की जीवन्तता विकसित हो रही है। जैसे कि वह अपने अस्तित्व से परिचित होने के साथ ही दूसरों के अस्तित्व के प्रति भी जागरूक होती जा रही है। इससे उसके भीतर सभी के प्रति अपनेपन का भाव बढ़ने लगा था। अब उसे अपनी उन्ही बुआ की बेटी की बातें याद आने लगीं। ये दीदी आयु में उससे काफी बड़ी थीं, और वे उसी के शहर में रहा करती थीं। दीदी और जीजाजी सार्वजनिक जीवन में काफी सक्रिय रहा करते थे। जब भी वह रविवार या किसी छुट्टी के दिन उनके घर जाती तो देखती उनसे मिलने के लिये बहुत लोग आया करते थे। उसे यह देखकर बहुत अच्छा लगता था कि उसकी दीदी अपने घर आने वाले हर व्यक्ति के साथ अपनेपन से बात किया करती हैं। एक बार उसने दीदी से पूछा, छुट्टी वाले दिन आपका सारा समय चाय बनाने, पिलाने और जूठे बर्तन धोने में बीतता है, आपको थकान तो जरूर होती होगी। फिर भी आप हर व्यक्ति से बहुत अपनेपन से बात भी किया करती हैं। क्या आपके मन कभी खीज नहीं उठती है? दीदी ने कहा जो स्वयं से प्रेम करता है वह सभी के साथ प्रेम-पूर्ण होता है। मैंने अपने पापा से यही सीखा है। क्या आप भी फुफाजी की तरह से ध्यान करती हैं? अंशु ने पूछा। हां, अंशु, दीदी ने कहा मेरे इस आचरण का कारण ध्यान ही है। उसे समझाते हुए दीदी ने कहा,यह अनिवार्य नहीं है कि हर किसी से साथ हमेशा अपनेपन का व्यवहार किया जाये। जैसी परिस्थिति हो उसी के अनुसार आचरण करना चाहिये। किसी व्यक्ति से पहली बार मिलने पर अपनेपन या रूखेपन दोनों ही तरह से बात की जा सकती है। अगर पहली मुलाकात में अपनेपन से बात की जाये तो बाद में दोनों तरह से बात की जा सकती है जबकि पहली बार में ही रूखेपन से बोल दिया तो अपनेपन से बात करने का विकल्प समाप्त हो जाता है।

इस तरह से रोज ध्यान में बैठने पर उसके मन से मैं और मेरा का भाव घटने लगा। उसके चेहरे पर एक संतुष्टि और खिलावट छाई रहती। इस बारे अपनी एक सहेली के पूछने पर उसने उसे समझाते हुए कहा, मैं हूं, यह मेरा है, यह यह है, ऐसे भाव में गहराई से उतरो। ■

बस अनुभव करो...

मैं हूं, यह मेरा है, यह यह है, ऐसे भाव में गहराई से उतरो।

यह सूत्र कहता है: 'मैं हूं।' इस भाव में गहरे उतरो। बस बैठे हुए इस भाव में गहरे उतरो कि मैं मौजूद हूं, मैं हूं। इसे अनुभव करो; इस पर विचार मत करो। तुम अपने मन में कह सकते हो कि मैं हूं; लेकिन कहते ही वह व्यर्थ हो गया। तुम्हारा सिर सब गुड़गोबर कर देता है। सिर में मत दोहराओ कि मैं जीता हूं, मैं हूं। कहना व्यर्थ है; कहना दो कौड़ी का है। तुम बात ही चूक गए। इसे अपने प्राणों में अनुभव करो। इसे अपने पूरे शरीर में अनुभव करो। केवल सिर में नहीं, इसे समग्र इकाई की भांति अनुभव करो। बस अनुभव करो: 'मैं हूं।'

जब मैं कहता हूं कि अनुभव करो कि मैं हूं तो उसका क्या मतलब है? मैं इस कुर्सी पर बैठा हूं। अगर मैं अनुभव करने लगूं कि मैं हूं तो मैं अनेक चीजों के प्रति बोधपूर्ण हो जाऊंगा—कुर्सी पर पड़ने वाले दबाव का बोध होगा, मखमल के स्पर्श का बोध होगा, कमरे से हवा के गुजरने का बोध होगा, मेरे शरीर से ध्वनि के स्पर्श होने का बोध होगा, हृदय की धड़कन का बोध होगा, शरीर में खून के मौन प्रवाह का बोध होगा, शरीर की एक सूक्ष्म तरंग का बोध होगा। हमारा शरीर जीवंत और गत्यात्मक है; वह कोई स्थिर, ठहरी हुई चीज नहीं है। तुम तरंगायित हो रहे हो। निरंतर एक सूक्ष्म कंपन जारी है; और जब तक तुम जीवित हो, यह जारी रहेगा। तो एक कंपन का बोध होगा। तुम इन सारी बहुआयामी चीजों के प्रति बोध से भर जाओगे।

और अगर तुम इसी क्षण अपने भीतर-बाहर होने वाली चीजों के प्रति इतने ही बोधपूर्ण हो जाओ, तो मैं हूं का वह अनुभव होगा जो उसका मतलब है। अगर तुम पूरी तरह बोधपूर्ण हो जाओ तो विचार रुक जाएगा। क्योंकि जब तुम अनुभव करते हो कि मैं हूं, तो यह अनुभव ऐसी समग्र घटना है कि उसमें विचार नहीं चल सकता।

शुरू-शुरू में तुम पाओगे कि विचार तैर रहे हैं। लेकिन धीरे-धीरे जब अस्तित्व में तुम्हारी जड़ें गहरी होंगी, जितने ही तुम अपने होने के अनुभव में थिर होगे, उतने ही विचार दूर होते जाएंगे। और तुम इस दूरी को महसूस करोगे। तुम्हें लगेगा कि ये विचार मुझे नहीं, किसी और को घट रहे हैं—बहुत-बहुत दूर। दूरी स्पष्ट अनुभव होगी। और तुम जब वस्तुतः अपने केंद्र में, अपने होने में स्थित हो जाओगे, तब मन विलीन हो जाएगा। तुम होगे; लेकिन न कोई शब्द होगा, न कोई प्रतिबिंब होगा।

तंत्र-सूत्र, प्रवचन 59

सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में ओशो हर संध्या साधकों के एक छोटे से समूह से मिलते थे, जिसमें वे लोग होते जो सन्यस्त होना चाहते थे या किसीकी कोई समस्या होती। इस मीटिंग को दर्शन कहा जाता था। दर्शन डायरियों के पन्नों में सिमटे, गुरु-शिष्य के बीच घटे ये संवाद क्षण, ओशो के सर्वदा छिपे उस आयाम को प्रकट करते हैं जो अधिकतर मित्रों के लिए अनजाना ही है। इन दर्शन डायरियों को मा प्रेम मनीषा व उनकी सहयोगी टीम ने दर्ज किया था, ज्यूं का त्यूं!

सब सीमाओं से मुक्ति ही स्वतंत्रता है...

एक संन्यासी कहता है : मेरे लिए यहां बहुत ही अजीब अनुभव रहा है। मैं पश्चिम को बहुत याद कर रहा हूं और मैं वापस जाना चाहता हूं। इस बारे में कभी-कभी मैं दुखी भी होता हूं।

ओशो : नहीं, दुखी होने की कोई बात नहीं है—पश्चिम जाओ। एक दिन तुम्हारे मन से पश्चिम विदा हो जायेगा, पर इसमें समय लगेगा। तुम पश्चिम में रहे हो, तुम्हारा वहां जन्म हुआ और वहां बड़े हुए हो—इससे बाहर आना इतना आसान नहीं होता है, किसी भी संस्कृति, किसी भी सभ्यता से बाहर आना आसान नहीं होता है।

तुम एक देश से दूसरे देश बहुत ही आसानी से आ सकते हो, यात्रा बहुत ही आसान हो चुकी है, लेकिन तुम अपने संस्कारों से बाहर नहीं आ सकते—वह तुम्हारा असली देश है।

पश्चिम नहीं है जो तुम्हें आकर्षित कर रहा है, यह तुम्हारा संस्कार है—तो हजारों-हजारों चीजें तुम्हें पश्चिम जाने के लिए याद दिलायेंगी, छोटी-छोटी बातें तुम्हें पश्चिम की याद दिलायेंगी। यहां बहुत गर्मी होगी और तुम पश्चिम जाने की सोचने लगोगे, खाना वैसा नहीं होगा जैसा तुम खाते रहे हो और तुम पश्चिम जाने की सोचने लगोगे। हर चीज—पर इसका संबंध तुम्हारे संस्कारों से है। संस्कारों से बाहर आना बहुत कठिन होता है, लेकिन धीरे-धीरे तुम सीखने लगते हो।

जब तुम अपने संस्कारों से मुक्त हो जाते हो तो तुम स्वतंत्र व्यक्ति बन जाते हो, तुम वैश्विक मनुष्य बन जाते हो। न तो तुम पश्चिमी हो न ही पूर्वी, न तो अंग्रेज न ही भारतीय न ही जर्मन न ही जापानी, वह असली स्वतंत्रता है। तब तुम्हारे चारों तरफ कोई परत नहीं रहती है। तुम कैप्सूल में नहीं हो, कैप्सूल टूट गया। तुम्हारे चारों तरफ किसी अंडे के छिलके जैसी किसी तरह कवच नहीं रहा।

जब पक्षी अंडे के भीतर होता है वह उड़ नहीं सकता—और यही तुम्हारी स्थिति है। जब मनुष्य भारतीय है या जर्मन है या अंग्रेज है या अमरीकन है तो वह अंडे के कवच में है। तुम उड़ नहीं सकते, तुम अपने पंख खोल नहीं सकते, तुम अस्तित्व की दी परम स्वतंत्रता का उपयोग नहीं कर सकते।

संस्कारों की परतों पर परतें चढ़ी हुई हैं। कोई जर्मन की तरह संस्कारित है, कोई ईसाई की तरह संस्कारित है, कोई कैथोलिक

की तरह संस्कारित और फिर अनेक संप्रदाय हैं, और यह सिलसिला चलता ही रहता है। कोई पुरुष की तरह संस्कारित है तो कोई स्त्री की तरह संस्कारित है। मैं जैविक भेद के बारे में बात नहीं कर रहा हूं—वह ठीक है, उसका संस्कार से कोई लेना-देना नहीं है—लेकिन पुरुष, पुरुष की तरह संस्कारित है। तुम लगातार याद रखते हो कि तुम पुरुष हो, कि तुम स्त्री नहीं हो, कि तुम्हें पुरुष की तरह व्यवहार करना है—कि तुम्हें रोना नहीं है, तुम्हें आंसू नहीं बहाना है, आंसू बहाना स्वीकार्य नहीं है, वह तो स्त्रैण बात है, तुमसे ऐसी अपेक्षा नहीं की जाती है। यह संस्कार है, यह तुम्हारे चारों तरफ परत की तरह है।

असल में स्वतंत्र पुरुष न तो पुरुष होता है न ही स्त्री—ऐसा नहीं कि जैविक भेद विदा हो जाता है, पर मनोवैज्ञानिक भेद गिर जाता है। एक स्वतंत्र व्यक्ति न तो काला होता है न ही गोरा—ऐसा नहीं कि काला गोरा हो जाता है और गोरा काला हो जाता है : चमड़ी तो वैसी रहती है जैसी कि पहले थी पर मनोवैज्ञानिक रंग अब नहीं बचता।

जब ये सारी चीजें गिर जाती हैं तब तुम भारमुक्त हो जाते हो। तुम जमीन से एक फीट ऊपर चलते हो; तुम्हारे लिए अब गुरुत्वाकर्षण काम नहीं करता है। अब तुम अपने किसी भी क्षण पंख पसार सकते हो और उड़ सकते हो, और अब कोई सीमा नहीं बचती।

इसलिए, तुम अनेक बार आओगे और अनेक बार जाओगे—पर आते और जाते, आते और जाते तुम शिथिल होते जाओगे। एक दिन सीमाएं धुंधली हो जायेंगी और तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कि तुम कौन हो : पश्चिमी या पूरवी। यहां मैं यही प्रयास कर रहा हूं।

पर कभी-कभी अच्छा है कि तुम वापस जाओ। अगली बार वापस जाने की लालसा अधिक नहीं होगी, क्योंकि जब तुम पश्चिम जाओगे तो तुम्हें पता चलेगा कि तुम इसके बारे में कल्पना कर रहे थे। वह सिर्फ कल्पना मात्र है जो संस्कारों से आती है। जब तुम पश्चिम जाओगे तो कहोगे, 'यहां क्या है? यहां आने के लिए मैं इतना बेचैन क्यों हो रहा था? यहां आने की इच्छा क्यों थी? मैं वापस क्यों आया हूं?' और तत्काल तुम वापस यहां आने के बारे में सोचने लगोगे।

इसलिए बस जाओ और इसके बारे में उदास होने की कोई जरूरत नहीं है। यह स्वाभाविक है, यह शिथिल होने की स्वाभाविक प्रक्रिया है। धीरे-धीरे सारी सीमाएं तुम्हारे लिए अर्थ खो देंगी।। और सीमाओं के बिना स्वतंत्रता है...।

फॉर मेडमेन ओनली : प्राइस ऑफ एडमीशन, योर माइंड

और कुछ गंभीर...

न्यायाधीश ने अदालत के कठघरे में खड़े सेठ चंदूलाल से कहा, इतनी छोटी सी बात के आधार पर, सेठ, तलाक नहीं दिया जा सकता। क्या तुम्हारे पास कोई ठोस प्रमाण भी हैं जिनसे पता चले कि तुम्हारी पत्नी तुम्हारे प्रति वफादार नहीं?

चंदूलाल ने कहा, एक नहीं हजारों प्रमाण हैं, माई लार्ड! कल की ही रात की बात है। यह रात को तीन घंटे गायब रही। और पूछने पर सफाई पेश करने लगी कि मैं अपनी सहेली गुलजान के साथ सिनेमा देखने गई थी।

जज ने पूछा, मगर तुम्हें यह कैसे पता चला कि तुम्हारी पत्नी झूठ बोल रही थी?

चंदूलाल ने कहा, क्योंकि कल रात को मैं तो खुद ही गुलजान के साथ सिनेमा देखने गया था! अब आप स्वयं सोचिए कि यह औरत मेरे साथ सरासर धोखा कर रही है या नहीं!

एक मोटा व्यक्ति समुद्रतट पर बैठा सामने की ओर देख रहा था, जहां जवान लड़कियां अल्प वस्त्रों में व्यायाम कर रही थीं। पास से गुजरते हुए दूसरे मोटे व्यक्ति ने कहा, आपका क्या खयाल है सेठ चंदूलाल! क्या इससे वजन घटता है?

चंदूलाल ने जवाब दिया, क्यों नहीं! इसी दृश्य को देखने के लिए तो मैं रोज सुबह तीन मील चल कर आता हूं! अरे, वजन क्यों नहीं घटेगा? घटता है।

सेठ चंदूलाल मारवाड़ी ने अपने दोस्त ढब्बूजी को बताया कि मेरी पत्नी कपड़ों के पीछे दीवानी है। जब देखो तब कपड़ों की मांग करती रहती है। सुबह से शाम तक एक ही रट लगाए रखती है कि नए कपड़े चाहिए। मैं तो यह सुन-सुन कर घनचक्कर हुआ जा रहा हूं। शादी को बीस साल हो गए, एक दिन ऐसा नहीं होता, जब वह कपड़ों की रट न लगाती हो। बस कपड़े! कपड़े! कपड़े!

ढब्बूजी बोले, आश्चर्य की बात है! आखिर वह इतने कपड़ों का करती क्या है?

चंदूलाल ने कहा, मुझे क्या पता! मैंने तो आज तक एक भी कपड़ा खरीद कर दिया नहीं।

सेठ चंदूलाल ने अपने मित्र ढब्बूजी से कहा, मेरे दांत में बहुत दर्द है। ढब्बूजी, क्या करूं?

ढब्बूजी ने कहा, कुछ करने की जरूरत नहीं। मेरे भी दांत में एक बार ऐसा दर्द हुआ था। मैं अपने घर गया और मेरी पत्नी के एक चुंबन मात्र से ही सारा दर्द खतम हो गया। इसलिए मेरी मानो और जैसा मैंने किया वैसा करो!

सेठ चंदूलाल बोले, बात तो बिलकुल ठीक है। लेकिन क्या तुम्हारी पत्नी इस बात के लिए राजी हो जाएगी?

मुल्ला नसरुद्दीन का बेटा फजलू कह रहा था, पापा, मैं पढ़ी-लिखी, बुद्धिमान, कुशल, सुशील और सुंदर लड़की से शादी करूंगा।

नसरुद्दीन ने कहा, मतलब! फजलू, पांच लड़कियों से एक साथ शादी करना चाहते हो?

एक युवती जैसे ही नदी में कूदने को थी कि चौकीदार ने उसे टोक दिया, रोक दिया। बोला कि नदी में नहाने की मनाही है!

युवती ने गुस्से में कहा, जब मैं कपड़े उतार रही थी, तभी तुमने यह बात क्यों न बताई?

चौकीदार बोला, यहां सिर्फ नहाने की मनाही है, कपड़े उतारने की नहीं!

किसी गुफा में तीन साधु ध्यानमग्न बैठे थे। एक दिन उधर से शेर गुजरा।

छह महीने बाद एक साधु बोला, कितना सुंदर शेर था!

एक साल बाद दूसरा साधु बोला, यह शेर नहीं चीता था!

दो साल बाद तीसरा साधु बोला, यदि तुम दोनों इसी प्रकार लड़ते-झगड़ते रहे तो मैं किसी दूसरे स्थान पर चला जाऊंगा!

एक स्त्री ने किसी फोटोग्राफर से मेले में पूछा, बच्चों की फोटो किस रेट से उतारते हो?

फोटोग्राफर ने कहा, दस रुपए में बारह!

तब तो मैं बाद में आऊंगी।

फोटोग्राफर ने कहा, क्यों?

उसने कहा, अभी तो मेरे सिर्फ दो ही बच्चे हैं!

'मैं मृत्यु सिखाता हूं' : ओशो

मौत से भयभीत व्यक्ति जी भी नहीं सकता। और कितने ही प्रयास कर लो, किसी न किसी दरवाजे, झरोखे, खिड़की, रंध्र से मौत दिखायी दे ही जाती है, कहीं से न कहीं से मौत की आहट सुनायी दे जाती है। और यह रोज होता है। मौत से भयभीत मनुष्यता ने हर तरह का प्रयास किया कि मौत दिखायी न दे, सुनाई न दे, महसूस न हो, लेकिन मौत जैसी अनिवार्य घटना से बचना असंभव ही है, मानव का किया हर प्रयास असफल होता ही है।

ओशो ने अपने शुरुआत के प्रवचनों के समय एक शृंखला का नाम रखा—'मैं मृत्यु सिखाता हूं।' ओशो याद दिलाते हैं कि मैं मृत्यु सिखा रहा हूं क्योंकि भयभीत मानव ने मौत से आंखें मींच लीं हैं।

ओशो बताते हैं कि मृत्यु एक असत्य है, लेकिन उसे जानना होगा कि वह असत्य है। इसके बिना मृत्यु का भय बना ही रहता है—'ज्ञान शक्ति है, ज्ञान ही मुक्ति भी। और ज्ञान ही विजय की यात्रा है। जिसे हम जान लेते हैं, उससे हम मुक्त हो जाते हैं। और जिसे हम जान लेते हैं, उसे हम जीत भी लेते हैं। हमारी हार और पराजय हमारे अज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अंधकार है, इसलिए पराजय है। प्रकाश हो तो पराजय असंभव है। प्रकाश विजय बन जाता है।

'मृत्यु के संबंध में पहली बात आपसे यह कहना चाहूंगा कि मृत्यु से अधिक असत्य और कुछ भी नहीं है। लेकिन मृत्यु ही सत्य मालूम होती है। न केवल सत्य मालूम होती है, बल्कि जीवन का केंद्रीय सत्य भी वही मालूम होती है। और ऐसा प्रतीत होता है कि सारा जीवन मृत्यु से घिरा हुआ है। और चाहे हम भूल जाते हों, भुला देते हों, लेकिन फिर भी मृत्यु चारों तरफ निकट ही खड़ी रहती है। अपनी छाया से भी ज्यादा अपने पास मृत्यु है।

'जीवन का जो रूप हमने दिया है, वह भी मृत्यु के भय के कारण ही दिया है। मृत्यु के भय ने समाज बनाया है, राष्ट्र बनाए हैं, परिवार बनाए हैं, मित्र इकट्ठे किए हैं। मृत्यु के भय ने धन इकट्ठे करने की दौड़ दी है, मृत्यु के भय ने पदों की आकांक्षा दी है, और सबसे बड़ा आश्चर्य यह है कि मृत्यु के भय ने ही हमारे भगवान और हमारे मंदिर भी खड़े कर दिए हैं। मृत्यु से भयभीत घुटने टेककर प्रार्थना करते हुए लोग हैं। मृत्यु से भयभीत आकाश की तरफ, परमात्मा की तरफ हाथ जोड़े हुए लोग हैं। और मृत्यु से ज्यादा असत्य कुछ भी नहीं है। इसीलिए मृत्यु को सत्य मानकर हमने जो भी जीवन की व्यवस्था की है, वह सब भी असत्य हो गई है।

'लेकिन मृत्यु का असत्य हमें कैसे पता चले? यह हम कैसे जान पाएं कि मृत्यु नहीं है? और जब तक हम यह न जान पाएं, तब तक हमारा भय भी विलीन नहीं होगा। और जब तक हम यह न जान पाएं कि मृत्यु असत्य है, तब तक जीवन हमारा सत्य नहीं हो सकता है। जब तक मृत्यु का भय है, तब तक जीवन सत्य नहीं हो सकता है। और जब तक मृत्यु से हम डरे हुए कंप रहे हैं, तब तक जीवन को जीने की क्षमता भी हम नहीं जुटा सकते।

'जीवन को केवल वही जी सकता है, जिसके सामने से मृत्यु की छाया विदा और विलीन हो गई है। कंपता हुआ मन कैसे जीएगा? डरा हुआ मन कैसे जीएगा? और मौत जब प्रतिपल आती हुई मालूम पड़ती हो तो हम कैसे जीएं? हम कैसे जी सकते हैं?

'और हम कितना ही भुलाए रखें मृत्यु को, वह भूली नहीं रहती। मरघट हम गांव के बाहर बनाएं तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता, वह दिखाई पड़ ही जाता है। रोज कोई न कोई मरता है, रोज कहीं न कहीं मृत्यु घटित होती है और हमारे जीवन की सारी की सारी नींव हिल जाती है। और प्रत्येक बार जब भी मृत्यु घटती हुई दिखाई पड़ती है, तभी हम जानते हैं कि मैं भी मरूंगा। जब हम किसी की मृत्यु पर रोते हैं, तब हम सिर्फ उसकी मृत्यु पर ही नहीं रोते, अपनी मृत्यु की खबर पर भी रोते हैं। और जब हम दुखी और पीड़ित होते हैं मृत्यु को देखकर, तो हम दूसरे की मृत्यु को देखकर ही दुखी और पीड़ित नहीं होते, उसमें हमारे मरने की संभावना भी प्रकट हो गई होती है।

'हर मृत्यु हमारी मृत्यु भी है। और ऐसे जब तक हम घिरे रहें, तब तक हम कैसे जी सकेंगे? तब तक जीना असंभव है। तब तक हमें जीवन का पता भी नहीं चल सकता, न उसके आनंद का, न उसके सौंदर्य का, न उसके रस का। तब तक जीवन का जो परम सत्य है—परमात्मा, उसके मंदिर के द्वार पर भी हम नहीं पहुंच सकते।'

ओशो याद दिलाते हैं कि ध्यान में उतरना, स्वयं में उतरना, अपने मौन में उतरना, स्व को जानना मृत्यु के असत्य को जानना है। ओशो ने अनेक ध्यान विधियां बनायीं, थैरेपीज बनायीं, अनगिनत प्रयोग करवाये और अपने वचनों से सतत हमें उस परम सत्य के करीब लेकर गये जहां मौत जैसी कोई चीज ही नहीं होती। और यदि हम मौत को जान लें तो जीवन को जान लिया जाता है। जन्म और मृत्यु के बीच का जीवंत जीवन, हर पल आनंद व उत्सव से भरा जीवन और उत्सव की इस यात्रा का जब अंत मौत के रूप में आये तो वह परम उत्सव—मृत्यु उत्सव।

और हम सभी ने इसी 'जीवन' को ओशो की देह में रोज-रोज देखा, महसूस किया, कर रहे हैं और देखा ओशो की मृत्यु कैसा न परम उत्सव!

अहा ओशो!

खुद से प्रेम

यह हर व्यक्ति के लिये चिंता का एक बड़ा कारण होता है कि दूसरे लोगों के मन में उसकी छवि कैसी है या कैसी बननी चाहिये? किंतु दूसरों के मन के दर्पण में बनने वाली हमारी छवि से अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह होता है कि हमारे मन के दर्पण में हमारी खुद की छवि,आत्म-छवि कैसी है? मनोवैज्ञानिक मैक्सवेल माल्ट्ज ने अपनी पुस्तक दि न्यू साइको साइबरनेटिक्स में लिखा है, 'आत्म-छवि ही आपके पूरे जीवन का निर्धारण करती है कि आप क्या करते हैं, क्या बनते हैं, किस दिशा में जाते हैं। और यह सब आप पर निर्भर करता है कि आप अपने अंदर कैसी आत्म-छवि का निर्माण करते हैं। इसके महत्व को समझें और इसे एक सकारात्मक आकार दें, ताकि वह आपके जीवन को ऊर्ध्वगामी बनाये न कि अधोगामी।' माल्ट्ज के इस वक्तव्य का निष्कर्ष यही निकलता है कि जीवन को सही अर्थों में जी पाने के लिये हमारे पास एक सकारात्मक आत्म-छवि होनी चाहिये। ऐसी आत्म-छवि बनाये रखने पर समाज में हमारी पहचान एक स्वस्थ मानसिकता वाले व्यक्ति के रूप में बन जाती है।

यह बात बिलकुल सच है कि हमारे बारे में दी जाने वाली दूसरों की राय हमें प्रभावित करती रहती है। लेकिन यह राय हमेशा सकारात्मक ही हो यह अनिवार्य नहीं है। कभी-कभी यह नकारात्मक भी हो सकती है। आश्चर्य की बात तो यह है कि हमारे मन का ढांचा ही कुछ ऐसा है कि सकारात्मक बात से हम भले ही संतुष्ट न हो पायें लेकिन नकारात्मक बात को दिल से लगा लेते हैं। तब निराशा, हताशा और अवसाद हमारी जीवन शैली बन जाते हैं। अपने प्रति नकारात्मकता से भरे हुए एक साधक को समझाते हुए ओशो कहते हैं, 'अपनी सोच के पुराने ढंग को बदल डालो, क्योंकि तुम्हारे सोचने का ढंग गलत है। हमेशा सकारात्मक पर विश्वास करो क्योंकि यह सहायता करेगा। यह तुम्हें और अधिक खोल देगा, तुम्हारे जीवन की ऊर्जाओं के लिये यह और अधिक रसपूर्ण होगा। लेकिन हर व्यक्ति यही कर रहा है। ऐसी सोच रखना कोई विशेष बात नहीं है, हर व्यक्ति की सोच यही है: जब कोई व्यक्ति कुछ नकारात्मक कहता है तुरंत ही तुम उसे स्वीकार कर लेते हो। भले ही ऊपर से तुम इससे इन्कार करो लेकिन कही गहरे में तुमने इसे अपने भीतर स्वीकार कर लिया है। और जब कोई व्यक्ति कोई सकारात्मक बात कहता है तो भले ही ऊपरी सतह पर तुम मुस्कुराओ और उसे धन्यवाद कहो लेकिन अंतस की गहराईयों में तुम इसे अस्वीकृत कर देते हो। इसका कारण यही है कि कोई व्यक्ति खुद से प्रेम नहीं करता है। इसलिये जब भी कोई व्यक्ति तुम्हारे बारे में कुछ नकारात्मक कह देता है तो उसकी यह बात तुम्हारे अपने खुद के बारे में पाले हुए ख्याल की तरह ही होती है और जब कोई व्यक्ति तुम्हारे बारे में कुछ सकारात्मक बात कहता है तो यह तुम्हारे भीतर अपने बारे में बनाई गई छवि के अनुरूप नहीं होती है। तुम्हें अपने आपसे घृणा करना सिखाया गया है इसलिये नकारात्मक तुम्हें संगत लगता है और सकारात्मक बस असंगत प्रतीत होता है। लेकिन सोचने का यह ढंग आत्मघाती ढंग है।' (*लेट गो*)

यह एक व्यवहारिक तथ्य है कि सोचने का यही आत्मघाती ढंग आज हमारे बीच में व्यापक रूप से फ़ैल चुका है। आत्म-निंदा से उत्पन्न आतंरिक अशांति को भुलाने के लिये लोग नशों की ओर आकर्षित हो जाते हैं। लेकिन नशा करके कब तक कोई खुद को भुलाये रख सकता है? जैसे हम हैं उसी रूप में खुद स्वीकार न कर पाना बहुत बड़ी समस्या बन चुकी है। ओशो कहते हैं, 'अगर किसी व्यक्ति में स्वयं के प्रति गर्व नहीं है, तो वह खुद से घृणा करेगा, वह आत्म-विनाशक होगा, उसके भीतर एक तरह की हीनता की ग्रंथि होगी। अहंकार के रूप में गर्व बुरा है, खुद से प्रेम के रूप में गर्व पूरी तरह से अच्छा है। दूसरों की तुलना में खुद को अधिक श्रेष्ठ समझने के रूप में गर्व गलत है, लेकिन अपने अस्तित्व की अभिव्यक्ति के रूप में गर्व पूरी तरह से उचित है।...अभिव्यक्ति अच्छी है, आक्रामकता बुरी है, तब गर्व अहंकार बन जाता है।' (*दि ओपन सीक्रेट*)

जो खुद को जानना चाहते हैं, जिनको ध्यान में छलांग लगानी है, उनके लिये खुद को स्वीकार करना, खुद से प्रेम करना बहुत महत्वपूर्ण है। एक ध्यान शिविर में आये हुए साधकों को ध्यान-प्रयोगों में भागीदारी से पहले दिशा-निर्देश देते हुए ओशो कहते हैं, 'अपने आप की निंदा न करें, वरना कुछ भी नहीं किया जा सकता है। अपने आप को अस्वीकार न करें, स्वयं अपने शत्रु मत बनिये। प्रेम पूर्ण रहें, मैत्रीपूर्ण रहें, और आप जैसे भी हैं खुद को स्वीकार कर लें। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप में कुछ भी गलत नहीं है। मैं यह भी नहीं कह रहा हूं कि आपको किसी रूपांतरण की जरूरत नहीं आप को उसकी जरूरत है। बहुत सी गलतियां हैं, लेकिन वे गलतियाँ पाप नहीं हैं, वे रुग्णताएं हैं,बीमारियां हैं।' (वेदान्त: सेवन स्टेप्स टू समाधि 1)

यहां पर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि अगर खुद से प्रेम करते हुए जीना पर्याप्त है तो ध्यान की क्या आवश्यकता है? लेकिन अगर हम सजगता की साधना नहीं कर रहे हैं तो खुद से प्रेम का यही भाव मनोविकृति में भी बदल सकता है। कुछ लोग खुद से प्रेम करने के स्थान पर आत्म-मुग्ध होकर, नार्सिसिज्म का शिकार बन जाते हैं। जबकि कुछ लोग खुद से प्रेम करने को आत्मरति, ऑटो-इरोटिज्म समझने लगते हैं। खुद से प्रेम करना हमें आत्म-सृजन की ओर लेकर जाता है न कि आत्म-विध्वंस की ओर। किन्तु हम यह कैसे जान सकते हैं खुद से प्रेम उचित दिशा में गतिमान है?

हमारा मार्गदर्शन करते हुए ओशो कहते हैं, 'अगर तुमने खुद को प्रेम नहीं किया है तो तुम नहीं जान पाओगे कि प्रेम क्या है। लेकिन इसके पहले कि तुम खुद से प्रेम कर सको तुम्हें खुद को जानना पड़ेगा; इसलिये प्रेम दूसरे स्थान पर आता है, ध्यान प्राथमिक है। और चमत्कार यह है कि अगर तुम ध्यान करते रहो और धीरे-धीरे अपने अहंकार से, अपने व्यक्तित्व बाहर निकल आओ अपने वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार कर लो तो प्रेम अपने आप से ही आ जायेगा। तुम्हें कुछ भी करने की जरूरत नहीं पड़ती है,यह एक सहज खिलावट है।' (*दि इन्वीटेशन*)

खुद ही खुद से खुद का सृजन कर सकने की कीमिया ध्यान है लेकिन खुद से प्रेम में हुए बिना यह संभव ही नहीं है।

INTRODUCING

iOSHO®

Everything **OSHO** in One App

OSHO **PLAY**

Collection of Osho Series in English and Hindi organized in 10 categories at your finger tips- Life issues, Eastern and Western mystics, Zen, Tantra and more.

OSHO **iMEDITATE**

Instructions and music for all 16 OSHO active meditations, plus the daily evening meeting available to you anytime anywhere.

OSHO **TV**

A library of master classes. OSHO's unique vision on vast variety of topics no one dared to tell you growing up - Sex, Love, Money, Priests, Politics and more

OSHO **RADIO**

Make your mornings or morning commute a Meditation. Osho talks streaming 24/7 in English and Hindi.

OSHO **TAROT**

The world's most popular Zen based reflection of the here and now.

Get your Free Access Today

Download on Play Store | Download on App Store | Get access on Osho.com

संतोष भारती

फरवरी 2024

मेष (मार्च 21-अप्रैल 20)

यदि आप सोच-समझकर, होशपूर्वक, सजगता से अपने जीवन को ठीक से देख पाते हैं तो निश्चित ही आप अपनी सीमाओं का आंकलन भी ठीक से कर पायेंगे व अपनी संभावनाओं का मूल्यांकन भी कर पायेंगे। और यदि आप ऐसा कर पाते हैं तो आप अपनी क्षमतानुसार वह सब करना चाहेंगे जो आप कर सकते हैं और उसके लिए नाहक प्रयास नहीं करेंगे जो आप नहीं कर सकते। इससे आपके भीतर एक तरह का संतुलन स्थापित होगा जो आपको शरीर, मन, भाव हर तल पर विश्रांत करेगा। यह माह आपके लिए गहन विश्राम लेकर आया है।

वृषभ (अप्रैल 21-मई 21)

ओशो का अमृत संदेश व उनके बताये ध्यान प्रयोग मानवता के लिए परम आशीर्वाद बनकर आये हैं। आप सौभाग्यशाली हैं कि आप इस आशीर्वाद से तर-बतर हैं। इस माह आप कोशिश करें कि जितना हो सके उतना अपने दैनिक कार्यकलापों से अधिक से अधिक समय निकालकर खुद के साथ रहें, ध्यान करें। लंबा श्रम व तनाव आपको इसका पूरा हकदार बनाता है कि आप कुछ समय पूरी तरह से विश्राम में चले जायें। यह विश्राम आपको नई ऊर्जा देगा, नया जीवन देगा, जहां से आप जीवन के नये व उच्चतर तलों को छूने में सक्षम हो पायेंगे।

मिथुन (मई 22-जून 21)

एक ही शब्द में कहना हो तो इस माह के लिए कहा जा सकता है कि शुभ व सफलता के लिए यह माह अति उत्तम है। और निश्चित ही इससे आप व आपके स्नेहीजन खुश भी होंगे व आनंदित भी। लंबे समय से जो कुछ आप चाह रहे थे, बहुत कुछ करने की कामना कर रहे थे, इस माह आप उन्हें सम्मान के साथ पूरा कर पायेंगे। यही समय है जब आप इस बात को गहरे से अपने हृदय में उतार लें कि अच्छा समय भी आता है और बहुत कुछ शुभ भी होता है। ऐसा जब न हो तो नाहक दुखी होने या तनाव पालने का कोई मतलब नहीं होता है।

कर्क (जून 22-जुलाई 22)

आज जो कुछ हो रहा है ठीक से देखें तो पूर्व में जो कुछ भी आपने किया, उसी का परिणाम है। पर मन के लिए यह बहुत आसान होता है कि अपने कर्मों को तो नहीं देखता, अलबत्ता दूसरों की जिम्मेदारी निकाल देता है, इससे जीवन में बदलाव नहीं आ पाता—वैसा ही जीवन चलता रहता है जैसा पहले से चला आ रहा है। बदलाव के लिए अपने जीवन को ठीक से देखना, अपनी जिम्मेदारी को देखना और जो कुछ भी अच्छे से अच्छा किया जा सके करते रहना आवश्यक बात होती है। अच्छी बात यही है कि इस माह आप अपने व्यवहार को पूरी तरह से बदलकर अपने जीवन के बदलाव की शुरुआत कर रहे हैं जिसके अच्छे परिणाम जल्दी ही मिलना शुरू हो जायेंगे।

सिंह (जुलाई 23-अगस्त 23)

यदि आप थोड़ा-सा भी सचेत होकर, होशियारी से अपने जीवन के रवैये को देखें तो पायेंगे कि आप अकसर वही गलती बार-बार कर लेते हैं जिससे पहले भी आपको तकलीफ हो चुकी है। ऐसे में सतत तनाव का रहना स्वाभाविक बात हो जाती है। अच्छी बात तो यह भी है कि आप खुद भी समझने लगे हैं कि कौन-सी गलती, कैसे बार-बार हो रही है। और इसी समझ के साथ आप स्वयं ने देखा ही होगा कि आप वही गलती अब नहीं कर रहे हैं और परिणामस्वरूप इन दिनों अधिक खुश व प्रसन्न हैं। बस बात यही समझने की है कि नाहक गलतियों को दोहराया नहीं जाये। इतना होने पर यह माह निर्णायक माह बनकर आपके सामने आने वाला है।

कन्या (अगस्त 24-सितंबर 23)

आज है जो राज है। बात तो छोटी-सी है और बहुत बार बोली भी जाती है, लेकिन इस छोटी-सी बात में जीवन की मूल्यवान हकीकत छुपी है। और आप इससे अच्छी तरह से वाकिफ हैं क्योंकि आपने आज के राज का आनंद इन दिनों खूब लिया है। यही समय है जब आप यह भी समझ लें कि हमेशा आज आता है और हमेशा ही राज होता है। बस मन की चालाकी से राज दूर रह जाता है। अच्छा होगा कि आप इस राज को हमेशा अपने पास रखें व अपने अनुभव से इसका आनंद लें।

तुला (सितंबर 24-अक्टूबर 23)

आप अकसर दूसरों को तो बहुत सारी काम की बातें बता देते हैं लेकिन जब आप स्वयं को जरूरत आन पड़ती है तो अपने ही काम की बात खयाल नहीं आती। समय है जब आप थोड़ा-सा ठहरकर, विश्राम लेकर इस बार अपने काम की बात का स्मरण करें। और जब आप अपने काम की बात को अपने जीवन में उतार लेंगे तो यह काम की बात आपके जीवन को नया अर्थ देगी और तब दूसरों को आपको काम की बात बोलनी नहीं पड़ेगी, आपका अपना जीवन उनके लिए साक्षात उदाहरण बन जायेगा। वही बात सबके काम की बात होगी।

वृश्चिक (अक्टूबर 24-नवंबर 22)

रोना-धोना, शिकायतें व नकारात्मकता की आदत बड़ी आसानी से लग जाती है क्योंकि असल में चारों तरफ अधिकतर लोग यही सब कर रहे हैं तो स्वाभाविक ही आप भी उस सम्मोहन से ग्रसित हो जाते हैं। अच्छा होगा कि आप इस सामाजिक सम्मोहन से अपने को बाहर लायें, अच्छे-से अपने जीवन को देखें, परखें और पायेंगे कि आपको तो किसी तरह की शिकायत की जरूरत ही नहीं है। नाहक चारों तरफ की चलती दूषित हवा आपको प्रभावित कर रही है। और जब आपके भीतर से मुस्कान आयेगी तो आप अपने चारों तरफ मुस्कान फैला पायेंगे। असल सेवा ऐसे ही होती है।

धनु (नवंबर 23-दिसंबर 23)

खर्चा करना—धन का, समय का, भाव का अच्छी बात है लेकिन यदि यह खर्चा अपनी जमा पूंजी से अधिक होता ही जाये तो हर तरफ से तंगी घेरने लगती है और यह तंगी तंग करने लगती है। आप सही समय से इस तंगी से बाहर आ पाये हैं और उतना ही खर्च कर रहे हैं जितना कि करना चाहिए और ऐसे में आप हर तल पर अपने को समृद्ध महसूस कर रहे हैं। यही समृद्धि आपको विश्रांत कर रही है, आनंदित कर रही है। यह जारी रहे इसके लिए यह भी स्मरण रहे कि खर्चा उतना ही जितना अपना खिस्सा इजाजत दे।

मकर (दिसंबर 24-जनवरी 20)

आप अच्छे व्यक्ति तो हैं, असल में हर कोई अच्छा ही है, लेकिन अनेकानेक जन्मों की चली आ रही कितनी ही कर्मों की गाथा इस अच्छे होने पर काले बादल बनकर मंडराने लगते हैं। ऐसे ही बादल इन दिनों आपको घेरे हुए हैं और अच्छी बात यह है कि इस माह स्वतः ये काले बादल छिटक रहे हैं और उजले उजाले की किरणें आने लगी हैं। इन्हीं किरणों को अपने मन की झोली में समेटकर अपने जीवन के हर तल को उजाले से भर लें, यही इस माह आपके लिए अस्तित्व का उपहार है।

कुंभ (जनवरी 21-फरवरी 19)

देखने में तो यह बात छोटी लगती है कि एक सीमित धनराशि आपको इतना आनंद दे रही है लेकिन मन की मांग से अधिक जितना भी मिलता है उतना बहुत अधिक से अधिक हो जाता है। और असल में इतनी ही धनराशि आपके पास सहज ही चली आयी है। इस धनराशि से आप वह सब करें जो आप बहुत लंबे समय से करने की सोच रहे हैं और कर नहीं पा रहे हैं। जब मन इस धनराशि को खर्च कर प्रसन्न होगा तो यह प्रसन्नता आपको आत्मिक तल पर भी प्रसन्न करेगी। तो समय निश्चित ही उत्सव का है, आनंद का है।

मीन (फरवरी 20-मार्च 20)

आपने जितना कुछ किया है और लगातार किया है आपको थका देने के लिए बहुत अधिक है। और इस थकान से आप इतने विचलित भी हुए हैं कि विश्राम का हर बहाना ढूंढ रहे हैं और यह माह परम विश्राम का अवसर लेकर आया है। और जब आप विश्राम का आनंद लेंगे तो देखेंगे कि असल में थकान की कभी कोई जरूरत होती ही नहीं है। बस आदतवश इतना कुछ व्यर्थ किये चले जाते हैं कि थकान जीवन का अनिवार्य हिस्सा बन जाती है। तो समय है जब आप विश्राम का आनंद लें व पक्का कर लें कि आगे से नाहक ही थकान न आने दें।

माह का संदेशः

हम सारे लोग मैं की पर्तों को मजबूत करने में लगे रहते हैं। छोटा मकान मैं को उतनी मजबूत पर्त नहीं देता, बड़ा मकान और मजबूत पर्त देता है। इसलिए छोटे मकान से बड़े मकान की दौड़ चलती है। थोड़े रुपये मैं को मजबूती नहीं देते, बहुत रुपये मैं को मजबूती देते हैं। इसलिए थोड़े रुपयों से बहुत रुपयों की तरफ दौड़ चलती है।

अहंकार किसी को सुखी नहीं होने देगा, क्योंकि अहंकार की सतत मांग यह होती है–और आगे, और आगे। क्योंकि जितना मिल जाता है, वह तो अहंकार उसे आत्मसात कर लेता है और उसकी भूख खड़ी हो जाती है–और आगे चाहिए। उसकी कोई तृप्ति नहीं है।

जैसे ही यह बात समझ में आ जाये, सारी मांग, सारी दौड़ स्वयं ही विदा हो जाती है। कुछ भी करना नहीं पड़ता। और तभी अती है परम तृप्ति।

ओशो

मेरे प्रिय,
प्रेम।
अंधेरा है, आंधियां हैं, अंधापन है।
मनुष्य जैसे इन सबका जोड़ है।
लेकिन, आशा है परिवर्तन की...आमूल रूपांतरण की।
और आशा अंधेरे से भी बड़ी है, आंधियों से भी शक्तिशाली है, अंधेपन से भी गहरी है।
मनुष्य की जड़ें तो अंधेरे में हैं।
पर जड़ें तो सभी अंधेरे में ही होती है।
लेकिन, जड़ें अंत नहीं, आरंभ ही हैं।
अंत तो सदा फूलों पर ही होता है।
वृक्षों में ही नहीं, मनुष्यों में भी तो फूल लगते हैं।
ऐसे फूलों की तलाश ही धर्म है।
दृश्य में अदृश्य की तलाश...वास्तविक में संभावना की तलाश ही धर्म है।
खोजो तो सीमा में असीम मिलता है।
खोजो तो रूप में अरूप मिलता है।
खोजो तो पदार्थ में परमात्मा मिलता है।
सीमित या साकार कहीं है नहीं।
वह तो बस न खोजने वाले चित्त की भ्रांति है।